धर्मायण

मूल्य : 20 रुपये
अंक 102
पौष, 2077 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

खरमास विशेषाङ्क

पौष मास में क्या करें?
क्या न करें!

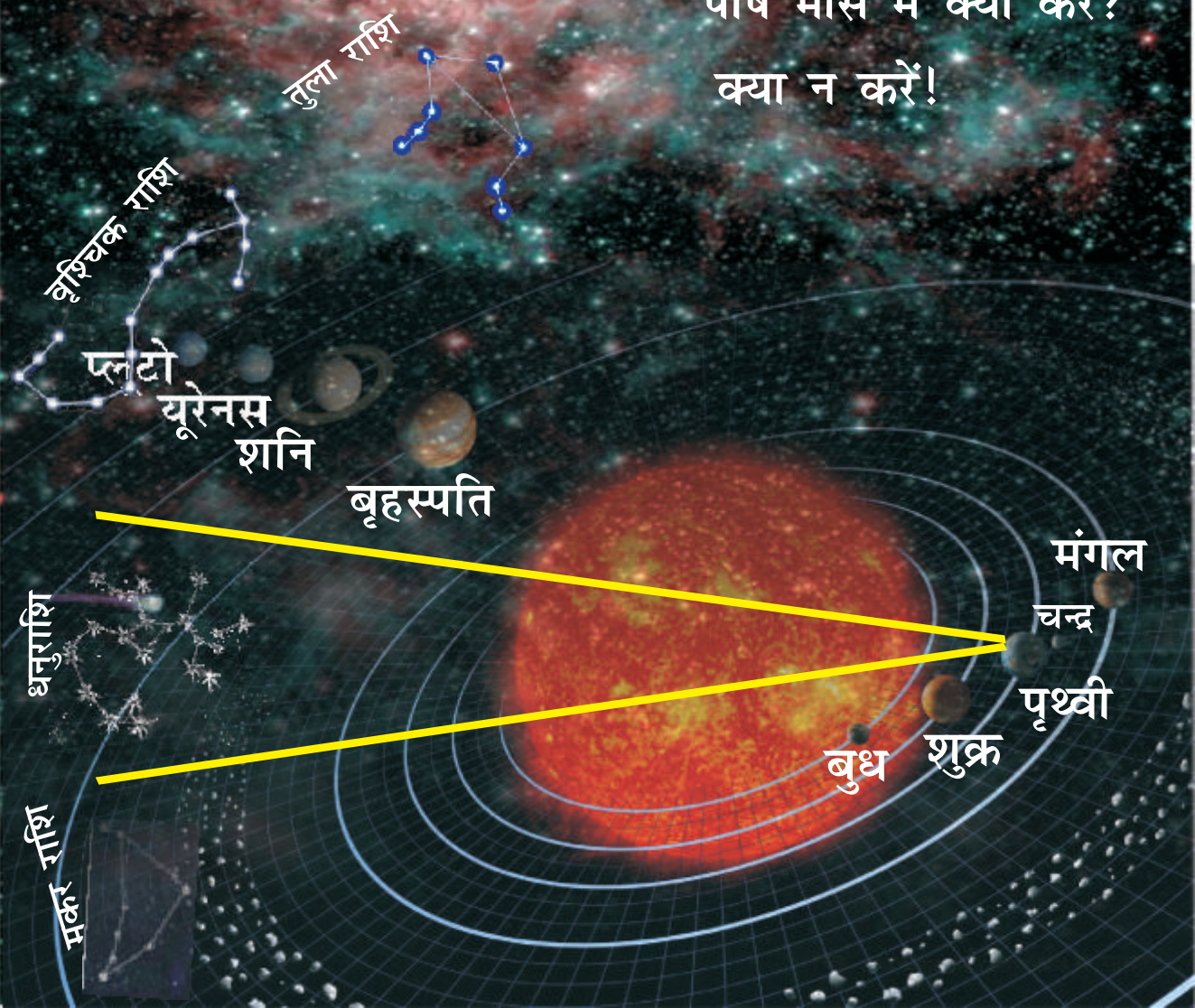

महावीर मन्दिर में मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी, दि. 19 दिसम्बर, 2020 को श्रीसीताराम-विवाह का द्विदिवसीय आयोजन।

महावीर मन्दिर में प्रतिदिन सन्ध्या के समय धार्मिक प्रवचन की व्यवस्था आरम्भ से ही चलती आ रही है। प्रवचन एवं भजन-कीर्तन करते हुए श्री गजेन्द्रजी महाराज।

धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 102
पौष, 2077 वि. सं.
31 दिसम्बर, 2020ई.– 28 जनवरी, 2021ई.

प्रधान सम्पादक
आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार:
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन: 0612-2223798
मोबाइल: 9334468400
E-mail:
dharmayanhindi@gmail.com
Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/
Whatsapp: 9334468400

मूल्य : 20 रुपये

आलेखानुक्रम

1. **खरमास- एक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन**
- डॉ. परेश सक्सेना 5
2. **पौष : फसल के लिए पुष्ययात्रा का अवसर और वर्षफल का दर्शक**
- डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू" 13
3. **पौष मास की पुष्यता**
- डॉ. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य 18
4. **'कृत्यरत्नाकर' के आलोक में पौषमास**
- डॉ. लक्ष्मीकान्त विमल 22
5. **खरमास : एक सिंहावलोकन**
- डॉ. रामाधार शर्मा 29
6. **पौष में सौभाग्य के लिए 'तिलदाही' व्रत का विधान**- संकलित 33
7. **पौष मास की विशेष पूजा- कूर्मद्वादशी** -संकलित 37
8. **पौष मास का एक लोक-विधान 'पुसैठ '**
-कुमुद सिंह 40
9. **पौष मास की एकादशी का माहात्म्य-** संकलित 42
10. **विष्णु : व्यापक वैश्विक स्वरूप**
- श्री अम्बिकेश कुमार मिश्र 51
11. **सनातन धर्म में गृहस्थ आश्रम एवं पति-पत्नी के आदर्श -**
-श्री राधा किशोर झा 55
12. **अध्यात्म-रामायण से रामकथा**
-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 65
13. **विद्या और विवेक में अन्तर**
-डॉ. राजनीति झा 69

पुस्तक समीक्षा- डा. रामविलास चौधरी कृत जलन्धरवधमहाकाव्यम् 74
महावीर मन्दिर समाचार, मातृभूमि-वन्दना, व्रत-पर्व, रामावत संगत से जुड़ें 76

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 101, अग्रहायण, 2077 वि.सं.)

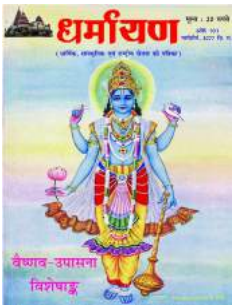

वैष्णव उपासना अंक के प्रकाशन की आत्मिक बधाई। इस दौर में यह बहुत श्रमसाध्य कार्य का सफल सोपान है। नारायण का विष्णु से समन्वय और शालग्राम शिला रूप से सकल (चित्र, अर्चा, प्रतिमा रूप) रूप प्रतिष्ठा... अनेक पक्ष रोचक हैं। विद्वज्जनों ने बहुत सुंदर विचार दिए हैं। जब स्थितियाँ सामान्य हों, ये अंक छपना चाहिए। पुन: बधाई पूरी टीम को।

डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू, उदयपुर (राजस्थान)

'धर्मायण' की संग्रहणीयता

'महावीर मन्दिर प्रकाशन' से प्रकाशित होनेवाला हिन्दी का सम्मान्य एवं शोधपत्र 'धर्मायण' अब 102वें अंक तक पहुँच गया है। यह शुरू से ही ज्ञान-पिपासुओं के लिए आस्वाद्य एवं मोदप्रद रहा है। लेकिन इधर इसकी संग्रहणीयता बढ़ी है। यद्यपि कोरोना-काल के कारण इसकी साफ्ट कापी ही दिख पा रही है, तथापि अब विषय-विशेष पर केन्द्रित शोधालेखों के संचयन के कारण इसका प्रत्येक अंक अपने कलेवर में ही पुस्तकवत् होता जा रहा है। यह पहले से ही बिहार का गौरव बढ़ानेवाला रहा है, अब तो अपने वैशिष्ट्य से शोधार्थियों का अतिशय मार्ग प्रशस्त करनेवाला है। दूर-दूर के बड़े-बड़े विद्वान् लेखकों को स्थान देकर स्वयं तो पुष्ट हो ही रहा है, भारतीय संस्कृति को भी पुष्टि दे रहा है। एतदर्थ व्यवस्थापक एवं सम्पादक स्तवनीय हैं। 'धर्मायण' सदा प्रगतिमान रहे, यही कामना है।

मार्कण्डेय शारदेय
सनातन ज्योतिष,
पाटलिग्राम एपार्टमेंट, शहीद भगत सिंह पथ,
बजरंगपुरी, गुलजारबाग, पटना-800007

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक **रामानन्दाचार्य विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। उन्होंने सामाजिक समरसता के लिए **जात-पाँत पूछै नहि कोय हरि को भजै सो हरि को होय** का नारा देकर मध्यकाल में एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया था। इस उदात्त परम्परा को आज के परिप्रेक्ष्य में विवेचन करने के लिए यह अंक प्रस्तावित है।

'धर्मायण' के अगले वर्ष की रूपरेखा

अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित करना है कि वि.सं. 2077 में अभी तक 10 अंक विशेषांक के रूप में निकल चुके हैं। पूर्वनियोजित दो अंक शेष हैं, जिनमें से माघ का अंक जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पर केन्द्रित है तथा उसका अगला अंक सन्त रविदास पर। हमें विश्वास है कि इन दोनों अंकों के सम्पादन में भी हमारे वरिष्ठ एवं विद्वान् लेखकों का पूरा सहयोग रहेगा और पूर्ववत् ये दोनों अंक गरिमामय रूप में निकल जायेंगे।

अगले वर्ष विक्रम संवत् 2078 के लिए भी हम प्रत्येक अंक के केन्द्रीय विषय पूर्व-निर्धारित कर लेना चाहते हैं। लेखकों के समूह के द्वारा कुछ सुझाव हमारे पास आये हैं, जो इस प्रकार हैं- संस्कार, चरित्र-निर्माण, शिक्षा, लोक-वाङ्मय, ज्ञान -विज्ञान, वर्णाश्रम-व्यवस्था, हनुमान्, वर्णाश्रम, महामना मालवीय, गृहस्थधर्म, छात्रधर्म, संन्यासधर्म, नवधा-भक्ति, एवं दशावतार। इन विषयों पर केन्द्रित अंक के लिए बहुमूल्य सुझाव आये हैं।

आप भी इनमें कुछ विषय जोड़ना चाहतें हैं तो सुझाव हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

-सम्पादक

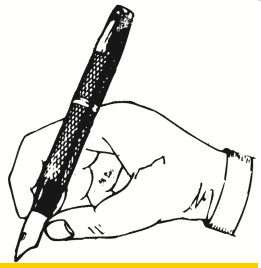

सम्पादकीय

पौषमास सनातन धर्म में अन्य मासों की तरह महिमामण्डित है। हाल के दिनों में भ्रान्तिवश कुछ लोग इसे बहुत ही गर्हित मास मानने लगे हैं। यहाँ तक कि पूजा-पाठ के लिए भी उसे वर्जित करने लगे हैं। लेकिन यदि हम अपने शास्त्रों का अवलोकन करें तो पता चलता है कि इस मास में भी अनेक व्रतों का विधान किया गया है। एकादशी, दशमी, अमावस्या, सप्तमी, अष्टमी आदि तिथियों में व्रतों के विधान किये गये हैं। आज आवश्यकता है कि हम खरमास नाम के कारण उन भ्रान्तियों को दूर करें तथा कुछ अज्ञानी ज्योतिषियों के द्वारा फैलायी गयी कथाओं पर ध्यान न दें।

यहाँ अतीत के कुछ उन अभिलेखों का संग्रह किया गया है, जिसमें पौष मास में शुभकर्म करने का विधान है।

मन्दाग्नि का कुण्ड अभिलेख, बिजौली अथवा विजयावली का अभिलेख

यह अभिलेख चित्तौर से 50 मील पूर्व-उत्तर कोण में तथा बूँदी से 35 मील पश्चिम दक्षिण कोण में अवस्थित है। कनिंघम ने अपने रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया है।[1] यहाँ 'मन्दाग्नि का कुण्ड' नामक एक कुण्ड है। इसके किनारे 3 फीट चौड़ा एवं 8 फीट लंबा एक अभिलेख मिला है। इसमें बड़े-बड़े अक्षरों में विभिन्न तिथियों में लोगों के द्वारा दान किये जाने का उल्लेख है-

द्वितीय पंक्ति में **संवत् 1376 वर्षे पौष सुदि 10 रवौ नैगम कायस्थ श्रीकाक्वसुत बलरुकेण स्वानदान श्री महंकाल प्रब्जाक्ष।**

तृतीय पंक्ति में- **स्वस्ति संवत् 1386 वर्षे पौष वदि 5 सोमो देव श्री महंकाल यात्रा नित्पमेव प्रागंभ**

आठवीं पंक्ति में- **न श्री महंकालहुतेन मन्वखं नित्यं करोति आगतं संवत्-86 पौष वदि 5 सोमे**

इसी शिलालेख में रिक्त स्थान में भी कुछ पंक्तियाँ हैं- **स्वस्ति संवत् 1386 वर्षे पौष वदि 5 सोमे देव महंक मंदाकिनीतीर्थे यात्रा नित्यमेव प्रणामं थयति।**

इन पंक्तियों में हम देखते हैं कि पौष मास में दान देने का उल्लेख हुआ है तथा मंदाकिनी तीर्थ के लिए यात्रा का भी उल्लेख है। इस प्रकार पौष मास में प्राचीन काल में तीर्थयात्रा सहित इन कृत्यों के करने की परम्परा थी।

दिल्ली अभिलेख

इसी प्रकार कनिंघम को दिल्ली में एक अभिलेख मिला था, जिसमें भी पौष मास में तीर्थयात्रा का उल्लेख है।[2] दिल्ली-मिरात अशोक स्तम्भ पर दो तीर्थयात्री-वृत्तान्त हैं।

1. **संवत् 1369 पौषदशम्यां शनौ ले वीरपालसुत सिद्धपति क्रोदवास विथु समायातम्।**
2. **संवत् 1581 वर्षे। पौष सुदि 1 लि. अमरकुपेरोज्य वात्ति।**

ये दोनों अभिलेख भी यात्री-वृत्तान्त प्रकार के हैं, जो इस मास में तीर्थयात्रा की पुष्टि करते हैं।

अलय डोड्ड का कोंकुदुरु दानपत्र

यह दानपत्र 1887 ई. में तत्लीन गोदावरी जिले के रामचन्द्रपुरम् के समीप कोंदुकुरु नामक गाँव से मिला था, जिसे तत्कालीन जिलाधिकारी के द्वारा चेन्नई म्यूजियम में भेज दिया गया।[3] इसमें कुल 7 पत्र हैं। इसमें अल्लय दोड्ड नामक किसी राजा के द्वारा गंगातट अर्थात् गोदावरी के तट पर भगवान् शिव की अर्चना तथा पौषमास के अर्धोदय योग में गुंपिणि नामक गाँव के दान करने का उल्लेख हुआ है। इसमें अर्धोदय योग का उल्लेख दो बार हुआ है-

कदाचिदर्धोदयपुण्यकाले दोड्डक्षितीशोर्चितपार्वतीशः।
दानानि रम्याणि विधाय गंगातटेग्रहारानपि दातुमैच्छत्।।22।।

श्रीशाके करबाणविश्वगणिते साधारणे वत्सरे
पौषेर्धोदयनाम्नि पुण्यसमये कौंतेयगंगातटे।
ग्रामं गुंपिणिनामकं सहलिकं सैश्वर्यभोगाष्टकं
विप्रेभ्योल्लयदोड्डभूपतिरदादाचन्द्रमातारकम्।।23।।

अर्थात् किसी समय अर्धोदय योग का पुण्यकाल में भगवान् शिव की पूजा के उपरान्त दोड्ड राजा ने अग्रहार ब्राह्मणों को गंगा तट पर दान करने की इच्छा प्रकट की। यहाँ ध्यातव्य है कि गंगा शब्द का प्रयोग केवल एक नदी विशेष के लिए नहीं सभी सपवित्र नदियों के लिए हुआ है। यहाँ गोदावरी के तट पर दान किया गया है, किन्तु उसके लिए गंगा शब्द का प्रयोग हुआ है। पौष मास के अर्धोदय योग में पुण्य समय में कौंतेय गंगा के तट पर अर्तात् गोदावरी के तटपर गुंपिणी नामक गाँव कृषियोग्य भूमि हलिक के साथ आठो प्रकार की भोग्य वस्तुओं के साथ अनेक विप्रों को राजा अल्लय ने चन्द्रमा एवं तारा की अवस्थिति पर्यन्त भोग के लिए दान किया।

गौडराज महिपाल का सारनाथ अभिलेख[4]

गौड राजा महिपाल एवं उनके दो पुत्रों श्री स्थिरपाल तथा वसन्तपाल के द्वारा सारनाथ, वाराणसी में गंधकुटी का निर्माण कराया तथा धर्मचक्र एवं धर्मराजिका की मरम्मत करायी। इससे पहले उन्होंने गुरु वामराशि को प्रणाम कर ईशान शिव के मन्दिर में चित्र बनबाये तथा घण्टा की स्थापना की। ये सारे कार्य संवत् 1083 पौष मास की एकादशी तिथि को कराये गये थे। यह पूरा अभिलेख इस प्रकार है

ओं नमो बुद्धाय।
वाराणसीसरस्यां गुरवश्रीवामराशिपादाब्जम्।
आराध्य नमितभूपतिशिरोरुहैः शैवलाधीशम्।।
ईशानचित्रघण्टादिकीर्तिरत्नशतानि यो।
गौड़ाधिपो महीपालः काश्यां श्रीमानकारयत्।।
सफलीकृतपाण्डित्यौ बोधावविविनिर्मितौ।
तौ धर्मराजिकां साङ्गं धर्म्मचक्रं पुनर्भवम्।।
कृतवन्तौ च नवीनामष्टमहास्थानशैलगन्धकुटीम्।
एतां श्रीस्थिरपालो वसन्तपालोऽनुजः श्रीमान्।।
संवत् 1083 पौष 11
.....

यहाँ स्पष्ट है कि इस मास में शिव मन्दिर में घण्टा टाँगे गये थे तथा चित्र बनवाये गये थे। गन्धकुटी का भी निर्माण तथा अन्य वस्तुओं की मरम्मत करायी गयी थी। इस प्रकार प्राचीन भारत में पौष मास के सम्बन्ध में दुष्ट मास या रुक्ष मास की कोई भ्रान्त अवधारणा नहीं थी।

सन्दर्भ

1 कनिंघम, एलेक्जांडर, रिपोर्ट ऑफ द डूर इन वेस्टर्न राजपुताना इन 1971-72 एण्ड 1873-74, भाग 6, कलकत्ता, 1878ई. पृ, 238
2 कनिंघम, एलेक्जांडर, रिपोर्ट फॉर द इयन 1872-73, भाग 5, पृ. स. 144.
3 इपिग्राफिया इंडिका, भाग 5, 1898-99ई., पृ. 53-69
4 इंडियन एंटीक्वेरी, भाग 14, 1885 ई., पृ. 139-140

***

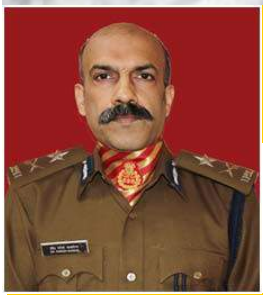

खरमास- एक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचन

डॉ. परेश सक्सेना*

सनातन परम्परा के पर्व-त्योहार ऋतुओं से सम्बद्ध हैं। ऋतुओं का प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है, अतः शरीर की पुष्टि, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की दृष्टि से हमारे सभी वर्षकृत्य निर्धारित किये गये हैं। यदि सम्पात-विचलन से हमारी ऋतुएँ बदल जातीं हैं तो धर्मशास्त्रीय निबन्ध-ग्रन्थों में पर्वों के उल्लेख अपने उद्देश्य से दूर हो जाते हैं। लेखक की मान्यता है कि हमें सायन पंचांग को अपनाते हुए पर्वों का मास निर्णय करना चाहिए। पौषमास को खरमास कहने का तात्पर्य दूसरा ही है, उसे किसी भी प्रकार से हीनमास या बुरा मास मानना उचित नहीं है।

*भारतीय पुलिस सेवा, बिहार संवर्ग, सम्प्रति केन्द्रीय प्रतिनियुक्ति, गृह मन्त्रलय, सशस्त्र सीमा बल, नई दिल्ली।

हिंदू धर्म में पर्व-त्यौहारों के तिथि निर्णय के लिए चान्द्र- सौर पंचांग प्रचलित है। यह परम्परा सनातन है। चन्द्रमा की कलाओं पर आधारित तीस तिथियों, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों के सम्पात के अनुसार बारह मासों के नामकरण, वर्ष में सूर्य की बारह संक्रान्तियों, और देव कार्यों तथा पितृकार्यों के लिए सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायण गति के आधार पर काल मान का उद्गम वेदों में है। वैदिक वाङ्मय विश्व की किसी भी सभ्यता की तुलना में काल गणना के प्राचीनतम अभिलेख हैं। ऋग्वेद में संवत्सर रूपी चक्र का प्रतीकात्मक वर्णन है जिसमें बारह मास और तीन सौ साठ दिन क्रमशः अरों और कीलों के रूप में वर्णित किये गये हैं-

द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिधामृतस्य।
आ पुत्रा अग्नेय मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।[1]

वेदों में सूर्य और चन्द्रमा दोनों की गतियों के अनुसार मास परिभाषित हैं- **समानां मास आकृतिः**[2] के वाक्य में संवत्सर अर्थ में समा शब्द आया है जो बारह चान्द्र महीनों से बनता है। दूसरी ओर, सौर महीनों का संकेत है कि **वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते।**[3] अर्थात् आदित्यों में ज्येष्ठ वरुण बारह महीनों और उनसे उत्पन्न तेरहवें को जानते है; यहाँ सौर और चान्द्र मासों के समायोजन के लिए अधिमास का प्रमाण इंगित है। वेदों में 'वर्ष' शब्द तो नहीं है लेकिन शरद, हेमन्त आदि पाँच ऋतुओं के एक आवर्तन को संवत्सर के अर्थ में अनेक बार प्रयोग किया गया है। ऋषियों को यह भली-भाँति ज्ञात था कि ऋतुओं और दिशाओं का नियामक सूर्य है- **पूर्वामनुप्रदिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विधावनुष्ठु।**[4]

उत्तर वैदिक काल में सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की खगोलीय गति पर सूक्ष्मता से विचार किया गया। वर्ष को बारह महीनों, दो अयनों, एवं छः ऋतुओं में विभाजन के लिए सूर्य और चन्द्रमा की नक्षत्रों के सापेक्ष स्थिति को आधार बनाकर यज्ञ आदि के विधान के लिये कालगणना के अनेकानेक सन्दर्भ हैं। शुक्ल यजुर्वेद की परम्परा में यज्ञवेदी पर इष्टकाएँ स्थापित करने के लिए तेहरवें से पन्द्रहवें अध्याय की कण्डिकाओं का उच्चारण किया जाता है, जिनमें प्रकृति के परिवेश में दो-दो मासों और उनसे सम्बन्धित ऋतुओं को भी इष्टका कहा गया है। शतपथब्राह्मण[5] में वर्ष की तीन ऋतुओं वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा के समय में सूर्य के उत्तरावर्तन को देवकार्यों के लिए एवं दक्षिणायन को पितृ-कार्यों के लिए उपयुक्त माना गया है।

1. ऋग्वेद 1.164.11
2. ऋग्वेद 10.85.5
3. ऋ. 1.25.8
4. ऋ. 1.95.3
5. शतपथब्राह्मण, 2.1.3.2

वैदिक काल में सम्पात की स्थिति

उस काल में कृत्तिका नक्षत्र मण्डल की उदयकालीन स्थिति से वसन्त ऋतु के आरम्भ में होने वाले यज्ञ का विधान निश्चित किया गया था, जो स्थिति ईसा से 2300 वर्ष पूर्व की है। तैत्तरीय संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में सत्ताईस नक्षत्रों का विस्तृत वर्णन है। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की गति के सन्दर्भ में उत्तरोत्तर क्रम से संवत्सर के अन्तर्गत ऋतुओं और मासों के अवयवों का परस्पर सम्बन्ध बताया गया है। उदाहरण के लिए, "**यथा सूर्यो दिवा चन्द्रमसे समनमन्न क्षत्रेभ्यः समनमद् यथा चन्द्रमा नक्षत्रैर्वरुणाय समनमत्**"[6] का अभिप्राय यह है कि सूर्य द्युलोक में संक्रमण करता है और चन्द्रमा नक्षत्र मण्डल में संचार करता है और चन्द्रमा वरुण के अनुसार चलता है अर्थात् धर्म के आधारभूत कर्मों के लिये प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार, "**संवत्सरोऽसि नक्षत्रेषु श्रितः। ऋतूनां प्रतिष्ठा। ऋतवः स्थ संवत्सरे श्रिताः। मासानां प्रतिष्ठा युष्मासु**"।[7] में वैदिक संवत्सर के काल मान के लिए नक्षत्र, ऋतुओं और मासों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध स्वतः स्पष्ट है।

मासों के नामकरण

वस्तुतः, वैदिक काल गणना का उद्देश्य मनुष्य के धार्मिक और भौतिक अभ्युदय को प्रकृति के अनुसार नियमित करना था। वैदिक काल से ही वसन्त ऋतु में वर्ष का आरम्भ माना जाता था। उस समय मास चान्द्र थे, जबकि ऋतुएँ सूर्य की गति के अनुसार होती हैं। यजुर्वेद में मधु-माधव, शुक्र-शुचि, नभस्-नभस्य, इष-ऊर्ज, सहस्-सहस्य और तपस्-तपस्य कुल बारह मासों को दो-दो मासों के युग्म में क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं से सम्बद्ध माना गया है। इन मासों के नामकरण के मूल में छः ऋतुओं के प्राकृतिक प्रभावों के साथ सीधा सम्बन्ध परिलक्षित होता है, जिसका कारण सूर्य की किरणों की तीव्रता में होने वाला नियमित परिवर्तन है। वसन्त में प्रकृति की मधुरता और मादकता, ग्रीष्म में सूर्य की चमक और तीव्रता, वर्षा में नभ का मेघों से आच्छादन, शरद में ऊर्जा का संचार, हेमन्त में संघर्ष तथा शिशिर में सहनशक्ति की परीक्षा और ताप का सेवन स्वयं स्पष्ट हैं।

महीनों के उपर्युक्त नाम आने वाले समय में गौण हो गए और उनके स्थान पर नक्षत्रों के नाम पर आधारित महीनों के नाम प्रयोग में आ गए। नक्षत्र स्वयं चालायमान नहीं होते, अतः नक्षत्रों के आधार पर किसी भी आकाशीय पिण्ड की खगोलीय स्थिति को अभिव्यक्त किया जा सकता है। सत्ताईस नक्षत्रों के चक्र में पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की कुल बारह नक्षत्रों, अर्थात् चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवण, पूर्वा भाद्रपद, आश्विन, कृत्तिका, मघा एवं उत्तराफाल्गुनी से सम्पात की स्थिति के आधार पर बारह महीनों के नाम जाने गए। इन चान्द्र मासों को सौर ऋतुओं के अनुसार समीकृत किया गया। वसन्त के महीने चैत्र एवं वैशाख, ग्रीष्म के महीने ज्येष्ठ एवं आषाढ़, वर्षा के महीने श्रावण एवं भाद्रपद, शरद के महीने आश्विन एवं कार्तिक, हेमन्त के महीने मार्गशीर्ष एवं पौष, तथा शिशिर के महीने माघ एवं फाल्गुन माने गए। लेकिन प्रतिवर्ष सौर एवं चान्द्र वर्षों में लगभग ग्यारह दिन का अन्तर पड़ जाने के कारण प्राचीन ज्योतिषाचार्यों द्वारा कालमान में **अधिक मास** का विधान किया गया। तदनुसार, प्रत्येक पाँच वर्षों में दो अधिक मासों के प्रक्षेपण से यथासम्भव ऋतुओं और तिथियों के बीच सामंजस्य की परम्परा पूरी तरह व्यावहारिक बनी रही जो आचार्य लगध द्वारा प्रणीत 'वेदांग ज्योतिष' के समय लगभग 1300 ई. पू. से आज तक प्रचलन में है।

भारतीय ज्योतिष में वर्णित चान्द्र तिथियों और नक्षत्र चक्र का उद्गम पूरी तरह से भारतीय है। यह भी विश्वसनीय प्रतीत होता है कि प्राचीन राशि चक्र में सूर्य की संक्रान्तियाँ बाद में प्रचलित हुईं। ज्योतिष-ग्रन्थों में बारह राशियों पर आधारित राशिचक्र का उल्लेख नहीं मिलता। कालान्तर में राशियों का प्रयोग, विशेषकर फलित ज्योतिष में, व्यवहृत हो गया, जबकि पर्व-त्यौहारों को मनाने और कृषि-वास्तु के कार्यों, इत्यादि के लिए जनमानस में नक्षत्रों पर आधारित कालमान का प्रयोग

6. तैत्तिरीय संहिता,7.5.23 7. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.11.1

पहले की तरह महत्त्वपूर्ण बना रहा। इतिहास के प्रमाण हैं कि वेदांग ज्योतिष की परम्परा सातवाहन राजाओं के शासन काल (200 ईस्वी) तक रही और शक-कुषाण-यवन राजाओं के समय से काल मान में राशियों का प्रयोग होने लगा। हिंदू शासन के उत्कर्ष के समय गुप्त संवत् का प्रयोग लगभग 319 ईस्वी में हुआ, जिसमें नक्षत्र और राशि दोनों प्रणालियों का पूर्ण समावेश हो चुका था। इसके लिए अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण को मेष राशि के आदि अर्थात् वर्ष के आरम्भ के रूप में परिकलित किया गया। वसन्त सम्पात में वर्ष का आरम्भ मानने पर ऐसी स्थिति लगभग 285 ईस्वी तक बनती थी। खगोलीय शास्त्र के आधार पर नक्षत्र चक्र में सत्ताईस नक्षत्र $13^0 20'$ के अन्तराल पर, जबकि राशिचक्र में प्रत्येक राशि 30^0 के अन्तराल पर अवस्थित होते हैं। इस प्रकार एक राशि लगभग सवा दो नक्षत्रों पर उपरिव्याप्त होती है, अतः दोनों चक्रों के बीच समञ्जन किया जाना सम्भव था। उस समय से ज्योतिष ग्रन्थों में राशि चक्र पर विचार किया जाने लगा, यथा-

प्राणादिकथितो मूर्त्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्त्तसंज्ञकः।
षड्भिः प्राणैः विनाडी स्यात्तत् षष्ठ्या नाडिका स्मृता।।
नाडी षष्ठ्या नु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैः स्मृता।।
ऐन्दवस्तिथिभिः तद्वत् सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते।।[8]

इसका अभिप्राय यह है कि सूर्य जिस मार्ग से चलता हुआ आकाश में परिक्रमा करता है उसको क्रान्तिवृत्त कहते हैं। इसके बाहरवें भाग को राशि कहते हैं 360^0 अंश का एक भचक्रवृत्त होता है जिसमें 30^0 का एक राशि सूर्य मंडल का केन्द्र जिस समय एक राशि दूसरी राशि में प्रवेश करता है उस समय दूसरी राशि की संक्रान्ति होती है। एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति को 'सौर मास' कहते हैं। इस प्रकार, ज्योतिष शास्त्र में सौर मास का ही विशेष गणना करने का विधान मान्य हो गया।

निरयन एवं सायन पद्धति से आये हुए अन्तर

वर्तमान समय में पंचांग बनाते समय नक्षत्रों को ईस्वी 285 की स्थिति में रखते हुए कालमान लिया जाता है। लेकिन आकाशीय स्थिति के अनुसार वसन्त सम्पात ग्रेगोरियन कैलेण्डर में 21 मार्च को होता है। अर्थात्, हिंदू पंचांग प्रणाली में इस तिथि को सूर्य रेवती नक्षत्र से कुछ पूर्व, मीन राशि में होता है। मेष से मीन राशियों की ओर राशि चक्र के पीछे चालायमान होने का कारण सूर्य के सापेक्ष परिक्रमण करने के दौरान पृथ्वी के अक्ष में पुरस्सरण होना है। इसे 'अयन-चलन' कहा जाता है जिसके फलस्वरूप विषुव और अयनान्त पश्चिम की ओर खिसक जाते हैं। 285 ईस्वी की स्थिति में अयनांश शून्य था लेकिन प्रतिवर्ष लगभग 50.3 कला का अयनान्तर हो जाता है। 71.6 वर्षों में कुल 1अंश अयनांतर हो जाता है। वेदांग ज्योतिष के पश्चात् 1800 वर्ष के कालक्रम में, एक अंश से एक मिनट की समतुल्यता के आधार पर, आज के समय में 24 दिन का अन्तर हो चुका है। गणित के अनुप्रयोग से शून्य अयनांश की स्थिति में पुनः आने के लिए 26000 वर्ष का समय लगेगा। अतः, इस दृष्टिकोण से आधुनिक कैलेण्डर और भारतीय पंचांग में मूल अन्तर यही है कि भारतीय पंचांग निरयन है अर्थात् कालमान में अयन को विचार में नहीं लिया जाता, जबकि आधुनिक कैलेण्डर सायन है, जिसमें विषुवों और अयनांतों की स्थिति लगभग स्थिर है। दोनों ही पद्धतियों में कालमानों को 50.3 कला के अयनान्तर पर सामञ्जित किया जा सकता है। शून्य अयनांश पर आधारित निरयन पंचांग में सूर्य की विभिन्न राशियों में संक्रान्तियाँ सायन स्थिति के सापेक्ष आगे होती हैं, इसकी जानकारी का प्रमाण मध्यकाल के धर्मग्रन्थों में मिलता है। हेमाद्रि ने कालनिर्णय में कहा है कि प्रचलित संक्रान्ति से बारह दिन पूर्व ही पुण्यकाल पड़ता है, अतः प्रतिपादित दान आदि कृत्य प्रचलित संक्रान्ति दिन के बारह दिन पूर्व भी किये जा सकते हैं। इसी

8. सूर्य सिद्धान्त- मध्यमाधिकार, श्लोक 11-13.

प्रकार, भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है मेष, कर्क तुला और मकर संक्रान्तियों के अयनांशतुल्य दिन पूर्व विषुव-अयन होते हैं-

त्रिक्यतुलादरसंक्रमपूर्वतोऽयनलवोत्थदिनैर्विषुवद्धिनम्।
मकरकर्कटसंक्रमतोऽयनं...।।[9]

स्पष्ट है कि निरयन और सायन पद्धति से कालमान का निर्णय करना हमारे आचार्यों के लिए कोई नई बात नहीं थी।

भारतीय ज्योतिष में खरमास की परिकल्पना का आधार

सूर्य के धनु राशि में संक्रमण की अवधि को तथाकथित 'खरमास' कहा जाता है। ज्योतिष में माना जाता है कि सूर्य के क्षेत्र में गुरु अथवा गुरु के क्षेत्र में सूर्य का संचरण 'गुरु-आदित्य योग' बनाता है, जिसमें कुछ शुभ कार्य जैसे नये कर्मों का लग्न, उपनयन, विवाह, मुण्डन एवं गृहनिर्माण का निषेध किया गया है। आधुनिक कैलेण्डर में धनु राशि में सूर्य का संक्रमण 21 नवंबर को ही हो जाता है, जो निरयन पंचांग में 15-16 दिसम्बर को होता है तथा मकर राशि में सूर्य का संक्रमण 21-22 दिसम्बर को होता है जो निरयन पंचांग में 14-15 जनवरी को होता है।

सूर्य सिद्धान्त 12.45, 51 के अनुसार जब सूर्य मकर राशि के आदि बिंदु में प्रवेश करते है तो उत्तरायण कहलाता है। इन दोनों संक्रान्तियों का यहाँ विशेष रूप से उल्लेख इसलिए किया गया है कि सामान्यतः खरमास को पौष सौर मास के समतुल्य समझा जाता है। यह मार्गशीर्ष-पौष अथवा पौष-माघ चान्द्र मासों की तीस तिथियों में व्याप्त होता है। गुरु-आदित्य योग की परिभाषा के अनुसार फाल्गुन-चैत्र चान्द्र मासों में भी खरमास है, जबकि सूर्य मीन राशि में संचरण करते हैं।

महाभारत युद्ध का मास

जनमानस में पौष माह वाली अवधि खरमास के रूप में अधिक मान्य है। जहाँ तक तथाकथित पौष खरमास का सम्बन्ध है, तो महाभारत का युद्ध इससे पूर्व सम्पन्न हो चुका था। 'निर्णयसिन्धु' के अनुसार भीष्म ने मकर संक्रान्ति के दिन, तदनुसार माघ शुक्ल अष्टमी को, प्रयाण किया था।[10] अतः उस काल में खरमास पौष शुक्ला सप्तमी से आरम्भ हुआ माना जाएगा। जय युद्ध के विवरण के अनुसार माना जा सकता है कि इस अवधि को पाण्डवों ने श्राद्ध-तर्पण के लिए गंगा तट पर एक मास के प्रवास के रूप में बिताया होगा। इसी अवधि में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ होगा और पितामह भीष्म ने प्रखर शरों पर तप करते हुए श्रीकृष्ण का ध्यान किया होगा और शान्तिपर्व में अंकित धर्म का उपदेश दिया होगा। शास्त्रों के अनुसार यह अवधि सूर्य के दक्षिणायन का अन्तिम एक महीना माना जाता है, क्योंकि सूर्य के मकर राशि में संक्रमण के साथ ही उत्तरायण आरम्भ हो जाता है। भीष्म पितामह ने सूर्य के उत्तरायण में आने के पश्चात इच्छा मृत्यु का वरण किया था; क्योंकि उत्तरायण में जीवात्मा "देवमार्ग" से प्रयाण करती है।

पुराणों में द्वादश आदित्यों के आधार पर वर्ष के बारह महीनों को रूपायित किया गया है। मत्स्य, ब्रह्माण्ड, भविष्य पुराण, आदि में धनु और मकर राशियों में संचारी सूर्य के दो महीनों को प्रायः "पूषा" और "भग" आदित्यों से सम्बद्ध माना गया है। उदारहण के लिए,

मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः।
माघे भगस्तु विज्ञेयः त्वष्टा तपति फाल्गुने।।[11]

यह सूर्य को समर्पित साम्ब-पुराण में अध्याय 9.7-8 का उद्धरण है जो कि 'भविष्य-पुराण' के अध्याय 78.55-57 जैसा ही है। वेदों में भग देवता को संपत्ति के प्रदाता के रूप मे तथा पूषन् को पशुओं के रक्षक के रूप में निर्देश दिया गया है।

9. भास्कराचार्य, सिद्धान्तशिरोमणि, स्पष्टाधिकार, 45 **10.** कमलाकर भट्ट, 'निर्णयसिन्धु' , वासुदेव शर्मा, मुंबई, चतुर्थ संस्करण, पृ. 164
11. ब्रह्मपुराण, 31.21

यदि केवल धनु राशि में सूर्य के संक्रमण की अवधि को "खरमास" या "पौष सौर मास"के रूप में विचार करें तो आवश्यक नहीं कि इस अवधि में चान्द्र मास केवल पौष का महीना ही रहे। उदाहरणार्थ, इस वर्ष खरमास 16 दिसम्बर, 2020 तदनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया से आरम्भ होकर 14 जनवरी, 2021 तदनुसार पौष शुक्ल प्रतिपदा तक रहेगा। इस अवधि में मार्गशीर्ष की पवित्र तिथियाँ जैसे श्रीसीताराम विवाह पञ्चमी, चम्पा षष्ठी और गीता जयन्ती अथवा मोक्षदा एकादशी के पर्व मनाए गए हैं और पौष कृष्ण प्रतिपदा को अच्युत व्रत है जिसमें तिल और घी से भगवान् विष्णु की पूजा का बहुत महत्त्व है। इस वर्ष की पौष पूर्णिमा भी खरमास की अवधि से मुक्त रहेगी। यदि मीन राशि में सूर्य के संचरण वाले चैत्र मास को खरमास कहा जाए तो उसमें संवत्सरारम्भ का समय है और अनेकानेक पवित्र व्रतों के लिए विख्यात है।

नामकरण में भ्रान्ति

खरमास का नामकरण किस आधार पर किया गया, इस पर अनेकानेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। कहते हैं कि खर का अर्थ दुष्ट और गधा है, जिसे इस अवधि के अशुभ होने के कारण प्रयोग किया गया है। कुछ पोंगा पंडितों ने तो अपने मन से पौराणिक आधार गढ़ लिये हैं, जिसके अनुसार ग्यारह महीनों में सूर्य अपने सात अश्वों वाले रथ पर गतिमान रहते हैं, लेकिन 'खरमास' में वे गधे पर सवार हो जाते हैं। खरमास को अशुभ मानना प्रथम दृष्टया अन्धविश्वास है, क्योंकि इस अवधि में जिन कार्यों का निषेध किया गया है, ग्रह-नक्षत्र-मुहूर्त विचार के अनुसार, उन कार्यों को शेष ग्यारह महीनो में भी लगातार नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, विवाह प्रकरण के लिए केवल फाल्गुन, माघ, मार्गशीर्ष, आषाढ़, ज्येष्ठ और वैशाख माहों को ही प्रशस्त माना गया है। दूसरी ओर यदि व्रत-उत्सव आदि के दृष्टकोण से विचार करें तो स्मृतियाँ, पुराणों और कृत्यरत्नाकर, वर्षक्रियाकौमुदी, 'निर्णयसिन्धु' , आदि ग्रन्थों में पौष माह में भगवान् शिव और भगवती की प्रसन्नता के निमित्त बहुत से व्रत-विधान किए गए हैं।

वस्तुतः हिंदू पंचांग का कोई भी मास या तिथि साधना- उपासना के लिए निषिद्ध नहीं है, जो साम्यवादियों के लिए चिंता का कारण है। कहने का तात्पर्य यह है कि तथाकथित खरमास में और पौष चान्द्र मास में धर्म और अध्यात्म के अभ्युदय के लिए बहुत से शुभ कार्य किये जाते हैं। खरमास में जीवन के संस्करण से सम्बन्धत कार्यों के निषेध का अभिप्राय अशुभ होना नहीं माना जा सकता है।

खरमास में निषेधों का कारण

यहाँ प्रश्न उठता है कि खरमास में संस्कारों और गर्हित लग्नों का निषेध क्यों किया गया? आइए, यदि हम पुनः 285 ईस्वी तक के कालखण्ड में भ्रमण करें, क्योंकि तब आज की ही तरह 22 दिसम्बर को आकाश में सूर्य की सापेक्ष गति दक्षिण अयनांत बिंदु से उत्तर की ओर शुरू होती थी; भले ही उसी समय सूर्य की मकर संक्रान्ति भी होती थी अर्थात् सूर्य मकर राशि के आदि बिंदु पर प्रवेश करते थे। वर्ष में उस तिथि का दिनमान सबसे कम होता है और कुछ दिनों बाद से, दिन बढ़ने का प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि पाश्चात्त्य सभ्यता में 25 दिसम्बर को "बड़ा दिन" की संज्ञा देकर ईसा मसीह का जन्म दिन मनाने की परम्परा भी उसी कालखण्ड के आस-पास आरम्भ हुई। इस कालखण्ड से पूर्व ही भारत में ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों और आयुर्वेद ग्रन्थों जैसे चरक संहिता, आदि का लोकहित में भरपूर प्रसार हो चुका था। इन ग्रन्थों में वर्ष के बारह मासों को सौर ऋतुओं से समीकृत करते हुए वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था। राशियों और ऋतुओं के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के विषय में सूर्य सिद्धान्त में बहुत ही स्पष्ट रूप से लिखा गया है-

द्विराशिनाथा ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः।।[12]

12. सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय, 10

इसका अभिप्राय है कि मकर से आरम्भ कर दो-दो राशियों की शिशिर आदि ऋतुएँ होती हैं। ये ही मेष आदि बारह मास हैं और इन्हीं से वर्ष बनता है। सूर्य वसन्त सम्पात से तुला सम्पात तक उत्तर गोलार्द्ध में रहता है। उस समय हमारे देश में दिनमान 30 घंटों से अधिक रहता है और वसन्त का कुछ भाग, ग्रीष्म, वर्षा और शरद का कुछ भाग, ये ऋतुएँ रहती हैं। 285 ई. में मिथुन राशि के अन्त में दक्षिणायन के आरम्भ के साथ वर्षा काल का भी आरम्भ होता था। दक्षिणायन के महीनों में सूर्यातप के लगातार कम होने के कारण हिमालय पर भारी हिमपात होता है और सूर्य के उत्तरायण में जाने के बाद भी लगभग एक माह तक ठंडी पर्वतीय हवाएँ भारत देश के उत्तरी मैदानों में उतर कर मनुष्यों को शीत से आक्रांत करती रहती हैं। धनु में सूर्य के संचरण का समय हेमन्त ऋतु तथा मकर में संचरण का समय शिशिर ऋतु कहलाता है। हेमन्त शब्द में हिम या हेम का अर्थ ओस गिरना है जिसका तापमान कम होने के कारण अन्त हो जाता है। ओस गिरने के स्थान पर कोहरा छाने लगता है। शिशिर शब्द का अर्थ मुँह से सीटी जैसी ध्वनि निकलना है जो कि ठंड के कारण मनुष्य की एक सामान्य प्रतिक्रिया का द्योतक है। यही समय है जब पश्चिमी विक्षोभ सिन्धु-गंगा के मैदानों तक आकर शीतकालीन वर्षा करते हैं जो गेहूँ और चना की फसलों को पोषण प्रदान करता है। अतः कृषि के दृष्टिकोण से नक्षत्र चक्र में "पुष्य (पोषक) नक्षत्र" तथा "मघा (वर्षा के देवता इन्द्र का) नक्षत्र" को विशेष रूप से नामित करते हुए धनु संचरण वाले चान्द्र मास को पौष मास तथा मकर संचरण वाले मास को माघ मास कहा गया। आज भी उत्तर-पश्चिम भारत में "पूस की रात में भीगना" एक लोकोक्ति है जिसका उद्गम पौष माह में गेहूँ के छोटे-छोटे पौधों की रात-भर पशुओं से रखवाली करने के क्रम में कृषक को होने वाली कठिनाई का द्योतक है। इसी प्रकार, बिहार के कृषक "मघेर की वर्षा" बहुत उत्साह के साथ स्वागत करते हैं क्योंकि गेहूँ और दलहन के लिए यह अमृत है। अतः यह स्पष्ट है कि आकाशीय स्थिति से भी लोगों के लिए खरमास की अवधि अन्न उत्पादन के लिए बहुत महत्वपूर्ण होती थी और वे ठंडक को सहते हुए भी इसे शुभ मानते हैं। कृषि की दृष्टि से शीतकालीन अन्न के लिए खरमास एवं अगले एक-दो महीने का समय बहुत अनुकूल है।

आयुर्वेद में वर्णित ऋतुचर्या, मानव-स्वास्थ्य एवं व्रतों-पर्वों के बीच सम्बन्ध

आयुर्वेद में बारह सावन महीनों के वर्ष अर्थात् एक वसन्त सम्पात से दूसरे वसन्त सम्पात तक कुल छः ऋतुओं के लिए ऋतुचर्या का विधान किया गया था। परंतु सावन वर्ष की अवधि नाक्षत्र वर्ष से लगभग 20 मिनट कम होती है, अतः प्रतिवर्ष ऋतुओं के आगे खिसकने की गति को अधिक मास से समायोजित किया गया, अर्थात् ऐसा मास जिसमें सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती। ऋतुचर्या को सरलता से ग्राह्य बनाने के लिए वर्ष को बारह मासों के एक ऋतु पर्यय के रूप में लेते हुए चरक संहिता में विधान किया गया था। "तस्याशितीयः" की व्याख्या में लिखा गया है-

इह खलु संवत्सरं षडङ्गमृतुविभागेन विद्यात्। तत्राऽऽदित्यास्योदगयनमादानं च त्रीनृतून् शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत्, वर्षादीन् पुनर्हेमान्तान्तान् दक्षिणायनं विसर्ग च।।4।।[13]

अर्थात् इस संसार में संवत्सर रूपी काल को छः ऋतुओं के विभाग से जानना चाहिए। जब सूर्य उत्तरायण होते हैं, तब "आदान" (ग्रहण) काल होता है। इससे शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म तीन ऋतुएँ बनती है और जब सूर्य दक्षिणायन हो तब "विसर्ग" काल होता है। इससे वर्षा, शरद और हेमन्त ये तीन ऋतुएँ बनती है। आगे लिखा गया है-

विसर्गे च पुनर्वायवो नातिरुक्षाः सोमश्चाव्याहृतबलः शिशिराभिर्भाभिरापूरयञ्जगदाप्याययति शश्वत् अतो विसर्गः सौम्यः।।5।।[14]

अर्थात् विसर्ग काल में वायु बहुत अधिक रूखी नहीं रहती; क्योंकि चन्द्रमा का बल परिपूर्ण होता है। इसलिए चन्द्रमा शीतल किरणों से जगत् का पोषण करता है, जगत् को नित्य बलवान् करता है। चरक आगे छठें, सातवें एवं आठवें सूत्र में लिखते हैं कि "हेमन्त ऋतु में जब सूर्य दक्षिणायन हो जाता है काल के स्वाभाविक मार्ग के कारण सूर्य का तेज घट जाने से और सोम का बल कम न होने से संसार में अरूक्ष स्निग्ध रस बढ़ते हैं। इससे मधुर रस हेमन्त में बढ़ते हैं और मनुष्यों का बल

13. चरक संहिता, सूत्रस्थानम् षष्ठोऽध्यायः 4 14. तदेव, 15

भी बढ़ जाता है"। दूसरी ओर, "आदान काल में सूर्य अपनी किरणों से संसार की स्निग्धता को हर लेता है और वायु तीव्र, तीक्ष्ण, रूखी और सुखाती हुई बहती है। अतः शिशिर में रूक्ष और तीखा रस बढ़ जाता है जिससे मनुष्यों के शरीर में निर्बलता आ जाती है"।

लेकिन कुल मिलाकर **शीते शीतानिलस्पर्शसंरुद्धो बलिनां बली** ठंडी हवाओं के कारण "विसर्ग के अन्त समय (हेमन्त में) और आदान काल के पहले काल (शिशिर में) मनुष्यों का बल बढ़ा रहता है"। इसी आधार पर चरक ने दोनों ऋतुओं के लिए ऋतुचर्या अर्थात्, कैसा आहार-विहार, आवास, मैथुन, आदि का विधान किया है। उन्होंने 19-21 सूत्रों में **हेमन्तशिशिरे तुल्ये** लिखते हुए यह सारांश दिया है कि "हेमन्त एवं शिशिर ऋतुएँ प्रायः शीत की दृष्टि से समान हैं। परंतु शिशिर काल में हेमन्त से इतना भेद है कि शिशिर का आदान काल होने से वायु रुक्ष होती है एवं बादल, वायु और बरसात शिशिर में अधिक होने से इस ऋतु में शीत अधिक होता है। इसलिए शिशिर ऋतु में हेमन्त की सम्पूर्ण विधि पालन करनी चाहिए"। उपरोक्त विमर्श से यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भी खरमास वाली हेमन्त ऋतु एवं अगले दो महीने की शिशिर ऋतु अवधि बल बढ़ाने के लिए अनुकूल मानी गई थी। और यह स्थिति आज भी वैसी ही है क्योंकि सायन वर्ष में ऋतुओं की गति लगभग वही है जो आचार्य चरक या आचार्य वाराहमिहिर ने घोषित की थी। लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि जाड़े के तीन-चार महीनों में लोग व्यायाम, तैलमर्दन और पोषक आहार लेकर अपना बल बढ़ाते हैं।

भावी प्रवृत्तियाँ

आचार्य चरक ने हेमन्त और शिशिर को जिस प्रकार समतुल्य माना था, ऐसा ही विचार वैदिक ऋषियों ने किया था। ऋग्वेद में तो केवल पाँच ऋतुओं का ही उल्लेख है जबकि अन्य वेद ग्रन्थ में छः ऋतुओं और उनके नामों का उल्लेख होने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण में तो यह स्पष्ट ही है कि हेमन्त और शिशिर दोनों को मिलाकर एक ही ऋतु मानते थे- **द्वादशमासाः पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन** (ऐ. ब्रा. 1.1)। आकाश में 22 दिसम्बर को ही सूर्य की वास्तविक उत्तरायण गति शुरू होती है जिसे "शीत सम्पात" कहा जाता है। अतः हेमन्त और शिशिर की चार माह की अवधि नवंबर से फरवरी के बीच रहेगी जो कि आधुनिक कैलेण्डर से सिद्ध भी होता है। दूसरी ओर, निरयन पंचांग में प्रत्येक वर्ष 9 मिनट के अन्तर से सूर्य संक्रान्ति आगे हटती है और सौ ग्रिगोरियन वर्षों में अधिवर्ष का हिसाब लेते हुए ऐसा होगा कि अगले 1200 वर्षों में धनु संक्रान्ति दिसम्बर से बढ़कर जनवरी में और मकर संक्रान्ति फरवरी में होने लगेगी। अभी यह अन्तर मात्र चौबीस दिनों का है और चूँकि हेमन्त और शिशिर ऋतुओं के तापमान में बहुत अन्तर नहीं है, अतः यह अन्तर सहज रूप से पता नहीं चलता। वैसे भी तीन-चार पीढ़ियों के बाद संक्रान्ति में एक दिन का अन्तर आता है। लेकिन यदि इसी गणित को आगे बढ़ाएँ तो निरयन पंचांग में लगभग 26000 वर्षों में एक ही मास में क्रमशः सब ऋतुएँ आ जाएँगी। अर्थात् आज यदि पौष में हेमन्त ऋतु और खरमास हैं तो सवा चार हजार वर्षों में इस माह में शिशिर, साढ़े आठ हजार वर्षों में वसन्त ऋतु और सत्रह हजार वर्षों में ग्रीष्म ऋतु होने लगेगी। यह स्थिति निश्चित ही संशोधन के योग्य है क्योंकि तब ऋतुचर्या अथवा कृषि की बुआई-कटाई के नियम पालन करने के लिए महीनों के नाम बदलने पड़ेंगे।

हिंदू धर्म सनातन धर्म है और यह अगले 26000 वर्षों तक क्या, आगे भी चलता ही रहेगा। दूसरी ओर, आज हिंदू भारत के बाहर पूरे विश्व में फैले हुए हैं। आज वे दक्षिण गोलार्द्ध के देशों जैसे आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, आदि में बसे हुए हैं। वहाँ सूर्य की गति और जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध से ठीक विपरीत है। ऐसे में वहाँ कौन सा पंचांग मान्य होगा, यह भी विचारणीय है। मेरे विचार से व्रत-पर्व -त्यौहारों- उत्सवों के लिए भारत में प्रचलित निरयन सौर चान्द्र पंचांग की ही मान्यता रहनी चाहिए किन्तु ऋतुचर्या अथवा जीवन के संस्करणों से सम्बन्धत कार्यों के लिए देशकाल के हिसाब से सौर मासों पर आधारित पंचांग बनाना चाहिए और उसकी तदनुसार निर्णय लेना चाहिए। फिलहाल यह तो माना ही जा सकता है कि दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों में तथाकथित खरमास का समय पौष (दिसम्बर-जनवरी) न होकर आषाढ़ (जून-जुलाई) होना अधिक व्यावहारिक होगा। सौर ऋतुओं के अनुसार मासों का निश्चय करने पर विषुवतीय देशों में खरमास की अवधारणा अप्रासंगिक होगी, जबकि शीत कटिबंधीय देशों जैसे अमेरिका, कनाडा, इग्लैंड आदि में खरमास की अवधि कुछ पहले आरम्भ होगी और लंबी चलेगी।

खरमास का नामकरण

अस्तु, अभी भी यह प्रश्न अनुत्तरित रहा कि खरमास का नामकरण क्यों हुआ और क्यों इस अवधि में संस्कारों के लिए क्यों निषेध किया गया। वामन शिवराम आप्टे ने अपने 'संस्कृत-हिन्दी कोश' में ज्येष्ठ मास को खरकोमल कहा गया है। प्रतीत होता है कि ज्येष्ठ मास में सूर्य की किरणें प्रखरतम होती हैं, तदपि, उन के प्रभाव को शीतल जल से सहन किया जा सकता है। हेमन्त और शिशिर के सन्धि काल में अवस्थित खरमास की शीत उससे भी असह्य है, अतः इसे केवल खर, यानी अत्यंत भीषण का बोध करते हुए व्यवहार किया जाने लगा। 'शब्दकल्पद्रुम' में खर का अर्थ दिया है "खाय अन्तरिन्द्रियाय खस्य वा तीव्रता रूपगुणं रातीति"अर्थात् जो आकाश और अन्दर की इन्द्रियों के लिए तीव्रता प्रदान करे। अमरकोश में खर को तीव्र, तीक्ष्ण और तिग्म के पर्याय के रूप में लिया गया है। खर के यह अर्थ ऋतु के प्रभाव की दृष्टि से बहुत समीचीन हैं और चरक संहिता के ऋतु वर्णन से पूरी तरह मेल खाते हैं। वेदों में तथाकथित खरमास सहित शीत के चार महीनों के लिए सहस् और तपस् जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया था, जो कि खर के उपर्युक्त अभिप्राय को सम्पुष्ट करता है। चूँकि इस ऋतु में उत्तर भारत की जलवायु सबसे कठिन होती है अतः विवाह, उपनयन, गृह प्रवेश आदि अनेकानेक कार्यों के लिए, जिसमें पूरे समाज के लोगों को आमन्त्रत किया जाता है, यह अनुकूल समय नहीं है और संभवतः इन कार्यों का विधान वर्ष के अधिक गर्म महीनों के लिए किया गया। यह स्वाभाविक रूप से अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि हिंदू धर्मशास्त्र लोगों के हित में बताते हैं कि अमुक समय अर्थात् अमुक ऋतु, मास, तिथि, नक्षत्र इत्यादि में अमुक कर्म करना चाहिए अथवा नहीं करना चाहिए। ज्योतिष और पंचांग उपर्युक्त विहित काल को निश्चित करने का एक साधन मात्र है।

इस लेख के माध्यम से मैं ज्योतिषाचार्यों को इस पर विचार करने के लिए अनुरोध करूँगा कि क्या मास संक्रान्तियों को सायन पद्धति से मानना तथा पर्वों को निरयन पद्धति से मानना अधिक व्यावहारिक और युक्तिसंगत होगा। मेरे विचार से खरमास का आधार शीत ऋतु के प्रभाव के अनुसार होना चाहिए, न कि निरयन धनु संक्रान्ति के अनुसार। ऐसा नहीं करने पर वही हाल होगा जो इस मन्त्र में बताया गया है-

निष्ट्वक्त्रासश्चिदिन्नरो भूरितोका वृकादिव।
विभ्यस्यन्तो ववाशिरे शिशिरं जीवनाय कम्।। निरुक्त 1.1.3.10।।

इसका अर्थ है अल्पमात्रा में वस्त्र रखने वाले बहुत पुत्रों वाले मनुष्य शिशिर ऋतु के आने पर उसी प्रकार भयभीत होते हैं जिस प्रकार जीवन की सुरक्षा करता हुआ सुख चाहने वाला व्यक्ति भेड़ियों से डरता है। तात्पर्य यह है कि कम वस्त्र वालों का शिशिर ऋतु में जीवन कष्टमय हो जाता है। आज भी भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोग वस्त्रों के अभाव में शिशिर एवं हेमन्त ऋतु में मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं।

अन्त में यह भी उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि सौर पौष मास के लिए खरमास शब्द का प्रयोग किसी भी धर्म ग्रन्थ अथवा ज्योतिष ग्रन्थ में नहीं मिला। रीतिकाल के कविवर बिहारी (संवत् 1660-1720) के एक दोहे में खरमास और पौष मास का समीकरण देखने को मिला-

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौ घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु।।

इसका अर्थ है पौष मास का दिनमान इतना कम हो गया है कि दिन आते और जाते नहीं जाना जाता, यानि पूस का दिन बहुत जल्दी बीत जाता है। सूर्य का तेज घटने से शीत इस प्रकार तीक्ष्ण (खरौ) हो गई जैसे कि ससुर के घर में रहने पर दामाद की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। कहते हैं कि युवा अवस्था में बिहारी की अपनीं ससुराल मथुरा में रहना पड़ा था। वहाँ निश्चय ही उन्हें अनादर मिला होगा। उस तीखे अनुभव की पौष के खरमास से तुलना करते हुए उन्होंने यह दोहा रचा होगा।

***

पौष : फसल के लिए पुष्ययात्रा का अवसर और वर्षफल का दर्शक

डॉ. श्रीकृष्ण "जुगनू"

"पौष मास हमारी आस्थाओं के जागरण का अच्छा अवसर है। 'देवगुरोस्तु हेम्नो' सर्वार्थचिन्तामणि[4] के इस निर्देश के अनुसार इस ऋतु का स्वामी बृहस्पति है जो स्वयं सद्बुद्धि प्रदाता हैं। ऐसे में इस अवधि में ज्ञानात्मक चेतना के लिए सद्ग्रन्थ के स्वाध्याय और जपादि किया जाना चाहिए। ॐ बृं बृहस्पतये नमः' मन्त्र सभी राशि के जातकों के लिए श्रेय प्रदायक सिद्ध होगा।"

"कहा गया है कि पौष मास में जबकि फसल खडी हो, तब कोई शुभ दिन देखकर लोगों को जुटाकर एक खेत से दूसरे खेत तक पुष्य-यात्रा का आयोजन करना चाहिए।"

पौष या पूस मास का माहात्म्य किसान के लिए तो है ही, ईश्वराधना के रूप में भी है। ज्योतिषीय मान्यताओं में इस मास में यदि आकाशीय गतिविधियों पर दृष्टि रखी जाए तो अगले वर्ष के शुभाशुभ होने का पूर्वानुमान भी किया जा सकता है। पौष को नया मास और धन्वसंक्रान्ति का अवसर कहा गया है। इस मास की पुराणों में स्नान और दान के मास के रूप में बड़ी महिमा है-

नवमे धनुषि पौषे मासि प्रत्यहं नीवारं गुडं च दद्यात्।[1]

इसी अवधि में धनुर्मास पड़ता है, इसका आशय है कि यह धनु की संक्रान्ति का महीना है, जिसके लिए हेमाद्रि ने विश्वामित्र के वचन उद्धृत किए हैं-

धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महत्फलम्।[2]

धनुर्मास को शुभ कार्यों की दृष्टि से वर्जित माना जाता है किन्तु यह अवधि हमारी आस्थाओं को मजबूती देने की दृष्टि से बहुत उपयोगी और फलदायी होती है। कामना लेकर इस अवधि में किया गया पाठ-पूजन निश्चित ही फलप्रद होता है। इसके आरम्भ से लेकर मकर संक्रांति तक, पूरे मास को धनुर्मास और लोक-मान्यताओं में मल मास कहा जाता है। वृश्चिक व धनु राशि में सूर्य के रहने पर हेमन्त ऋतु होती है- **हेमन्त वृश्चिकद्वन्द्वे।**[3]

पौष मास हमारी आस्थाओं के जागरण का अच्छा अवसर है। **'देवगुरोस्तु हेम्नो' सर्वार्थचिन्तामणि**[4] के इस निर्देश के अनुसार इस ऋतु का स्वामी बृहस्पति है जो स्वयं सद्बुद्धि प्रदाता हैं। ऐसे में इस अवधि में ज्ञानात्मक चेतना के लिए सद्ग्रन्थ के स्वाध्याय और जपादि किया जाना चाहिए। ॐ बृं बृहस्पतये नमः' मन्त्र सभी राशि के जातकों के लिए श्रेय प्रदायक सिद्ध होगा। ज्योतिष शास्त्रों में सूर्य के दक्षिणायन गमन पर्यंत काल को रात्रि के रूप में जाना जाता है, ऐसे में इस अवधि में मुहूर्तों को विराम लग जाता है। सामान्यतः विवाह, चूडाकर्म, जलाशय, देवप्रतिष्ठा, जलस्रोत, उद्यान,

1. सुदामा मिश्र, दानदीपिका, (1936), जयकृष्णदास हरिदास गुप्त, बनारस, पृ. 85.
2. तदेव, पृ. 87
3. लक्ष्मीकान्त कन्याल, (1931ई.), ज्योतिषतत्त्वप्रकाश, 1.34, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 10.
4. सर्वार्थचिन्तामणि, श्लोकसंख्या 50, (1906ई.) लक्ष्मीवेंकटेश प्रेस, मुंबई, पृ. 5.

*फैलो इंडोलॉजी, राजश्री कॉलोनी 40, विनायक नगर, उदयपुर, राजस्थान, मेल : skjugnu@gmail.com

यज्ञोपवीत, अग्नि का आधान, चौलकर्म, शपथ समारोह और नूतन गृह प्रवेश आदि नहीं किए जाते हैं। यही मत धाराधिप भोजदेव कृत **राजमार्तण्ड** में आया है

रात्रिभागः समाख्यातः खरांशोर्दक्षिणायनम्।
व्रतबन्धादिकं तत्र चूडाकर्म च वर्जयेत्॥
जलाशय - सुरारामप्रतिष्ठा - व्रतबन्धनम्।
आन्याधानं विवाहं च चौलं राज्याभिषेचनम्।
नवगेहप्रवेशादीन् न कुर्यादक्षिणायने।[5]

पौष में पुष्ययात्रा का प्रचलन

राजमार्तण्ड को प्रथम निबन्ध ग्रन्थ स्वीकारा जाता है। उसमें **'कृषिपराशर'** के श्लोक भी संग्रहित है। **कृषिपराशर** में पौष मास में लोगों द्वारा समूह बनाकर पुष्य यात्रा उत्सव आयोजित करने का सन्दर्भ मिलता है। यह प्राचीन काल में वैसे ही होता था, जैसा कि कुछ समय पहले तक खेतों में सहभोज रखने का प्रचलन था। कहा गया है कि पौष मास में जबकि फसल खडी हो, तब कोई शुभ दिन देखकर लोगों को जुटाकर एक खेत से दूसरे खेत तक पुष्य-यात्रा का आयोजन करना चाहिए

अखण्डिते ततो धान्यो पौषे मासि शुभे दिने।
पुष्ययात्रां जनाः कुर्युरन्योन्यक्षेत्रसन्निधौ॥[6]

पराशर ने कहा है : लोगों को चाहिए कि वे बस्ती के वृद्ध सज्जनों को साथ लें और यात्रा के बाद भोजन पकाएँ। इसमें खीर, मत्स्य, मांस तथा शाकाहारी भोजन हो। निरामिष भोजन हींग, मरिच आदि से युक्त हों। दही, दूध, घी का प्रयोग करते हुए खीर बनाएँ और पानक द्रव्य भी तैयार करें। नाना प्रकार के फलों का प्रयोग करें जिसमें मूल भी हों। मिठाइयों और पिष्टक से भोजन को विस्तार देना चाहिए और अन्नादि को केले के पत्तों पर परोसकर वृद्धों के आगे रखना चाहिए। इसके बाद, आचमन करते हुए परस्पर घिसे हुए चन्दन का लेपन करें और सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग भी करें। इस यात्रा में सभी नवीन वस्त्रों से अलंकृत हों। ताम्बूल का प्रयोग करें। फूलों के आभरण धारण करें। इन्द्र देव को नमस्कार करते हुए गाजे-बाजे के साथ नृत्यादि भी करें। तत्पश्चात् सभी को भास्कर की ओर देखकर मन्त्र पाठ करना चाहिए। इसके चार श्लोक दिए गए हैं

क्षेत्रे चाखण्डितधान्ये पुष्ययात्राप्रभावतः।
अस्माभिर्मानिता सर्वैः सास्मान् पातु शुभप्रदा॥
कर्मणा मनसा वाचा ये चास्माकं विरोधिनः।
सर्वे ते प्रशमं यान्तु पुष्पयात्राप्रभावतः॥
धान्यवृद्धिः यशोवृद्धिः प्रवृद्धिर्दारपुत्रयोः।
राजसम्मानवृद्धिश्च गवां वृद्धिस्तथैव च॥
मन्त्रशासनवृद्धिश्च धनवृद्धिरहर्निशम्।
अस्माकमस्तु सततं यावत् पूर्णो न वत्सरः॥[7]

उक्त मन्त्रमय प्रार्थना में यह कामना की गई है कि इस अविभाजित धान्य के खेत पर हम सभी लोगों द्वारा सम्मानित लक्ष्मी पुष्य-यात्रा के प्रभाव से हमें शुभफल प्रदान करें। हमारी रक्षा भी करें। जो कोई मन कर्म-वचन से हमारे विरोधी हों, वे

5. भोजराज, राजमार्तण्ड, श्रीकृष्ण जुगनू (सम्पा.), 2011 ई. चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, श्लोक 278.
6. कृषिपराशर, श्लोक सं. श्रीकृष्ण जुगनू (सम्पा.), प्रकाशनाधीन, श्लोक सं. 221.
7. तदेव, 229-232

इस पुष्य-यात्रा के प्रभाव से शान्त हो जाएँ। हमारे लिए इस उत्पादित होने वाले धान्य की अभिवृद्धि हो, कीर्ति का प्रसार हो। स्त्री और पुत्रों की वृद्धि हो। राजकीय सम्मान की वृद्धि हों, गोधन की अभिवृद्धि हों। शासन के मन्त्रियों की वृद्धि हों, धन की अहर्निश अभिवृद्धि हों। ऐसी वृद्धि का क्रम तब तक निरन्तर रहे, जब तक कि यह वर्ष पूरा न हो जाए।

यह भी रोचक प्रसंग है कि समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाली इस यात्रा को मुनि पराशर ने ही प्रवर्तित किया था-

हिताय सर्वलोकानां पुष्ययात्रा मनोहरा।
पुरा पराशरेणेयं कृता सर्वार्थसाधिनी।।[8]

ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि फसल की अभिवृद्धि और समस्त बाधा विघ्नों के शमन के लिए इस पुष्य-यात्रा का आयोजन करना चाहिए-

तस्मादियं प्रयत्नेन पुष्ययात्राविधानतः।
सर्वविध्नप्रशान्त्यर्थं कार्या शस्यस्य वृद्धये।।[9]

दान का अवसर

'दानदीपिका' में कहा गया है कि इस मास में गुड़ और ऊनी वस्त्र, कम्बल आदि का दान करना चाहिए। इनके मन्त्र भी बताए गए हैं

प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः।
मम तस्मात्परां शान्तिं ददस्व गुड सर्वदा।।[10]

विष्णु की प्रीति के उद्देश्य से कम्बल व ऊर्णवस्त्र के दान के मन इस प्रकार हैं-

शीतवर्षाहरः पुण्यो दृष्टो बलविवर्द्धनः।
कम्बलस्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम ॥
ऊर्णावस्त्रं चारुचित्रं देवानां प्रीतिवर्द्धनम्।
सुखस्पर्शकरं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे।।[11]

उक्त ग्रन्थ में स्कान्द के वचनों को उद्धृत किया गया है जिनमें आया है कि पूस मास में गोदान, वस्त्रदान, धान्यदान, लवणदान और गुड़ का दान होना चाहिए, विशेषकर चांदी, घृत, नारियल, बिजौरा नीबू और भूरे कोहड़े का दान भी किया जा सकता है। ऐसा कम्बल जिसमें भीतर रेशम हो (पट्टगर्भ) तो वह घोर शीत को रोकता है-

पौषमासे तु सम्प्राप्ते गोदानानि च कारयेत्।
वस्त्रदानं तथा कार्य धान्यदानं तथैव च।।
लवणस्य तथा दानं गुडदानं तथैव च।
विशेषतो रौप्यदानमाज्यदानं विशेषतः।।
नारिकेलं मातुलुङ्गं कूष्माण्डं तु तथैव च।
कम्बलः पट्टगर्भश्चेन्महाशीतविनाशकः।
स एव विपरीतश्चेन्महावृष्टिविनाशकः।।[12]

8. तदेव, श्लोक 234
9. तदेव श्लोक 235.
10. सुदामा मिश्र, पूर्वोक्त, पृ. 86.
11. उपरिवत्, पृ. 86
12. उपरिवत्, पृ. 86-87.

शौनक के प्रति आए स्कान्द वचनों में यह भी कहा गया है कि धनुराशि के सूर्य में कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गोदावरी नदी के तट पर ऐसा बोलकर दीपदान करना चाहिए- विष्णु प्रसन्न हों। इससे कोटि-कोटि यज्ञ करने से जो पुण्य मिलता है, वही पुण्य सुलभ होता है। पुरुष द्वारा दीप को बुझाने और स्त्री द्वारा कोहड़े को काटने का जो दोष लगता है, वह निवृत्त होता है –

वसुराशौ तु सम्प्राप्ते श्रीसूर्ये शृणु शौनक।
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च तथा गोदावरीतटे।
दीपदानं प्रकर्तव्यं गोविन्दः प्रीयतामिति।
कोटियज्ञेन यत्पुण्यं तत्पुण्यं समवाप्यते।।
पुरुषाद्दीपविच्छित्तिः कृष्माण्डच्छेदनं स्त्रियाः।
अचिरेणैव कालेन वंशच्छेदो भवेद्ध्रुवम्।।[13]

संवत्सर के फल का प्रेरक :

पौष मास से आगामी वर्ष में होने वाली वर्षा के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता रहा है। इस मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या को यदि आकाशीय गर्भ हो तो सुभिक्ष का योग बनता है। यह योग आरोग्यता भी प्रदान करता है और यह गर्भ श्रावण की पूर्णिमा को वर्षा करवाता है, **मयूरचित्रकम्** का मत है।

कुह्वन्तासु त्रितिथिषु पौषे गर्भः प्रजायते।
तदा सुभिक्षमारोग्यं श्रावण्यां वारिवर्षणम्।।[14]

पौष कृष्णा सप्तमी पर यदि आधी रात के बाद वर्षा हो अथवा बादलों की गर्जना हो तो उस क्षेत्र में वर्षा काल में वृष्टि नहीं होती है. यह महर्षि नारद का कथन है। पौष मास के पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के दिन यदि बादल दिखाई दें, गरजे या बरसें, इन्द्रधनुष या बिजलियाँ चमकती दिखाई दें तो वर्षाकाल में उत्तम वर्षा होगी, अन्यथा वर्षाकाल में जल नहीं बरसेगा। पौष शुक्ला पंचमी को यदि हिमवर्षा या तुषारापात हो तो वर्षाकाल में बहुत वर्षा होती है। पौष शुक्ला सप्तमी को रेवती, अष्टमी को अश्विनी तथा नवमी को भरणी नक्षत्र हो जो इस वर्ष में दिखाई देता है, में विद्युत् चमकती दिखाई दे तो पावस काल में पर्याप्त वर्षा होती है, इसमें कोई संशय नहीं है। पौष की अमावस्या को मूल नक्षत्र हो तो घास पर्याप्त सस्ता होता है, यह योग इस वर्ष मिल रहा है। पौष की एकादशी को रोहिणी नक्षत्र में वर्षा हो तो वर्षाकाल में अच्छी वर्षा होती है। यह योग आगामी 16 जनवरी को पड़ रहा है। पौष की संक्रांति के दिन इस वर्ष शुक्रवार होने से अनाज के दामों में स्थिरता बनी रहेगी। पौष मास में मूल नक्षत्र से लेकर भरणी नक्षत्र तक आकाश में बादल हो तो वर्षाकाल में आर्द्रा से लेकर स्वाती नक्षत्र तक वर्षा होती है। ऐसे में 3 से 14 जनवरी तक आकाश में बादलों का निरीक्षण करना चाहिए। पौष शुक्ला सप्तमी को बादल हो तो श्रावण शुक्ल सप्तमी को उतम वर्षा होगी, **मयूरचित्रम्** का ऐसा मत है :

शुक्लायां यदि सप्तम्यां धनैराच्छादितं नभः।
तदा स्याच्छ्रावणे मासि सप्तम्यां वृष्टिरुत्तमाः।।[15]

'कृत्यकल्पतरु' के अनुसार पौष कृष्णा अष्टमी को बुधवार हो तो उस दिन स्नान व दानादि से भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं। **शिवपुराण** की विद्येश्वर संहिता के अनुसार पौष मास में शतभिषा नक्षत्र आने पर विधिपूर्वक गणेशजी की पूजा करनी चाहिए। यह पूजा अभीष्ट सिद्धि को देने वाली है। पंचांग से वर्ष में ऐसा देखना चाहिए। पौषमास में पूरे महीने भर जितेंद्रिय रहकर गायत्री का जप एवं रात्रि में सोने से पूर्व तक भगवान् शिव के पंचाक्षरी मन्त्र का जप करना मोक्ष प्रदाता बताया गया है।

13. उपरिवत्, पृ. 88.
14. नारदप्रणीतम् वृष्टिविज्ञानम् मयूरचित्रम्, डा. श्रीकृष्ण जुगनू एवं अनुभूति पोद्दार (सम्पा.) अ.12. श्लो.26, परिमल पब्लिकेशन्स,, दिल्ली,
15. उपरिवत्, अध्याय 12, श्लोक 30

किसके लिए शुभ :

ज्योतिषीय मान्यताओं के अनुसार धनु की संक्रांति लेखकों, पत्रकारों, धर्मोपदेशकर्ताओं, व्याख्याताओं, आचार्यादि वर्गों के लिए शुभकारक सिद्ध होगी। इसी प्रकार राजकीय सेवा वालों, राजनेताओं, राजदूत आदि को नई दृष्टि देने का अवसर सिद्ध हो सकता है किन्तु सैनिकों, सिपाहियों और रक्षात्मक मामलों से जुड़े लोगों को कष्ट हो सकता है। मसाला और गृह निर्माणोपयोगी सामग्री के भावों में इजाफा हो सकता है।

इस मास में जन्म लेने वालों के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में **कोष्ठिप्रदीप** में आया है कि ऐसा व्यक्ति अपनी बात को छुपाकर रखने वाला, काया से छरहरा किन्तु परोपकारी, अपने परिश्रम से धनार्जित करनेवाला और कष्ट उठाकर भी धन का संचय करने वाला, कानून का जानकार और धैर्य का परिचय देने वाला सुधीर होता है :

निगूढमन्त्रः सुकृशांगयष्टि : परोपकारी पितृवित्तहीनः।
कष्टान्वितार्थव्ययकृद्विधिज्ञः पौषप्रसूतः पुरुषः सुधीरः॥[16]

***

16. शब्दकल्पद्रुम, राधाकान्तदेव, 'पौष' शब्द के विवेचन में उद्धृत।

पौष मास में दशतारक का विचार

पौषे मूलभरण्यन्तं चन्द्रचारेण गर्भति।
आर्द्रादितो विशाखान्तं सूर्यचारेण वर्षति।।
वाताभ्रगर्जत्तडितोदकानि हिमप्रपातः करकावघातः।
अकालसन्ध्यापरिवेषणञ्च नवप्रकारैः प्रभवन्ति गर्भा।।

यह प्राचीन भारत में वर्षा सम्बन्धी भविष्यवाणी का एक रूप है। पौष मास में मूल नक्षत्र के अन्त से लेकर भरणी नक्षत्र तक 'दशतारक' कहलाते हैं। इन नक्षत्रों में पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, रेवती, अश्विनी, तथा भरणी ये दश नक्षत्र आते हैं। ये दस दिन लगभग पौष मास की अमावस्या से दशमी तक रहता है। यहाँ कहा गया है कि इन दस नक्षत्रों वाले दिनों में यदि चन्द्रमा के संचार होने पर मेघ गर्भ धारण करता है तो आर्द्रा से विशाखा तक 10 नक्षत्रों में सूर्य के रहने पर अर्थात् आषाढ से अग्रहायण मास तक अच्छी वर्षा होती है। नौ प्रकार की घटना होने पर मेघ का गर्भधारण माना जाता है- तेज हवा बहना, बादल लगना, मेघ का गर्जन, बिजली चमकना, वर्षा होना, ओला गिरना, वज्रपात होना, विना समय का भी सन्ध्या-जैसा हो जाना तथा चन्द्रमा एवं सूर्य के चारों ओर मण्डल बनना- इन नौ लक्षणों से मेघ का गर्भ धारण माना जाता है।

पौष मास की पुष्यता

डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य*

जिस मास की पूर्णिमा तिथि पुष्य नक्षत्र में हो उसे पौष मास कहते हैं। पुष्य नक्षत्र पोषक माना गया है। लेखक ने पौष मास के सम्बन्ध में यहाँ दो प्रकार से व्याख्या करते हुए कहा है कि विवाह, उपनयन, मुण्डन एवं गृह-निर्माण इन्हीं चार कर्मों का निषेध पौष मास में किया गया है, क्योंकि ये कर्म सौर मास के आधार पर किये जाते हैं। दूसरी ओर अन्य सभी प्रकार कर्म , जो चान्द्रमास के आधार पर किये जाते हैं, उनके लिए यह पौष मास पुष्टिकारक है।

दुर्गां गणपतिं विष्णुं शिवं दिनकरं तथा।
पञ्चब्रह्मात्मकं देवं वन्दे विघ्ननिवृत्तये।।

सनातन धर्म के लौकिक पारलौकिक शक्ति संचरण में विशिष्ट रहस्य का अवदान अग्रसर है। इसका परिक्षेत्र बहुत व्यापक है। आंशिक निश्चित परिधि में पौषमास पर आलेख शीर्षक सान्निध्य को पुष्ट कर रहा है। यह सर्वविदित है कि मुख्य रूप से मास दो प्रकार के होते हैं1. सौरमास और 2. चान्द्र मास।

सौरमास उसे कहते हैं जब सूर्य निर्धारित गति से एक राशि से दूसरी राशि पर संक्रमित होते हैं तो मास स्वरूप का निश्चय होता है। जैसे जबतक मेष राशि पर सूर्य रहते हैं तबतक वैशाख मास कहते हैं. जैसे

मेष	-	वैशाख	वृष	-	ज्येष्ठ
मिथुन	-	आषाढ	कर्क	-	श्रावण
सिंह	-	भाद्रपद	कन्या	-	आश्विन
तुला	-	कार्तिक	वृश्चिक	-	अग्रहायण
धनु	-	पौष	मकर	-	माघ
कुम्भ	-	फाल्गुन	मीन	-	चैत्र

विवाहादि शुभमुहूर्तों के निर्धारण में सौर मास की महत्ता होती है।12 राशियों पर मेषादि क्रम से वैशाखादि मासों का निर्धारण किया गया है। यह है सौर मास का संक्षिप्त परिचय।

चान्द्र मास का निर्धारण नक्षत्र से सम्बद्ध है। जैसे-

अश्विनी	-	आश्विन,	कृतिका	-	कार्तिक,
मृगशिरा	-	मार्गशीर्ष,	पुष्य	-	पौष,
मघा	-	माघ,	पूर्वाफल्गुनी	-	फाल्गुन,
चित्रा	-	चैत्र,	विशाखा	-	वैशाख,
ज्येष्ठा	-	ज्येष्ठ,	पूर्वाषाढा	-	आषाढ.
श्रवणा	-	श्रावण,	पूर्वभाद्र	-	भाद्रपद।

*व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

जिस नक्षत्र से जिस मास की सम्बद्धता है, प्रायः वह नक्षत्र उस मास की पूर्णिमा तिथि में सन्निविष्ट रहता है। हाँ, गति के कारण पूर्णिमा तिथि आगे-पीछे वह नक्षत्र अवश्य रहता है। अतः नक्षत्र के प्रभाव से तत्सम्बद्ध मास प्रभावित होगा।

पौष शब्द का अर्थ

अमरकोष में पौष मास के तीन पर्याय शब्द है- पौषे तैषसहस्यौ द्वौ (1.4.14) के अनुसार पौष, तैष एवं सहस्य। रामाश्रमी टीका में पौष शब्द की व्यत्पत्ति है- पुष्येण तिष्येण च युक्ता पौर्णमास्यस्मिन्। स पौषः अर्थात् पुष्य नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा जिस मास में हो उसे पौष कहते हैं। पुष्य शब्द से "नक्षत्रेण युक्तः कालः"(पाणिनि सूत्र- 4.2.3) से अण् प्रत्यय, "तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि य लोप इति वाच्यम्" इत्यादि वार्तिक (6.4.144) से य का लोप होने पर 'पौष' शब्द बनता है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि पुष्य नक्षत्र का ही पर्याय शब्द है- तिष्य, जो तुष् तुष्टौ धातु से "सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः" सूत्र (6.4.144) से क्यप् प्रत्यय कर 'तिष्य' शब्द की साधुता होती है, जिसकी व्यत्पत्ति है- तुष्टन्ति अस्मिन् इति तिष्यः। पुष्णाति सिद्धयन्ति सर्वाणि कार्याणि इति पुष्यः। अर्थात् जिसमें सभी कार्यों की सिद्धि पुष्टि होती है वह पुष्य है। इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थों के आधार पर सभी 27 नक्षत्रों में पुष्य नक्षत्र सर्वतः श्रेष्ठ है तो निश्चित ही पुष्य नक्षत्र सम्बद्ध मास भी श्रेष्ठ है।

27 नक्षत्रों में पुष्य को सिंहस्थानापन्न माना गया है। शेष नक्षत्रों को मृग। यथा-

पापैर्विद्धे युते हीने चन्द्रताराबलेऽपि च।
पुष्ये सिद्ध्यन्ति सर्वाणि कार्याणि मङ्गलानि च।।
ग्रहणे विद्धाप्यशुभान्वितोऽपि विलोमगोऽपि करोत्यवश्यम्।
सकलार्थसिद्धिं विहाय पापिग्रहणेव पुष्ये।।

अर्थात् चन्द्रतारा बलहीन तथा पापविद्ध या अन्य अशुभ दोषों से युक्त होने पर भी पुष्य नक्षत्र सर्वसिद्धिदायक है। मात्र पाणिग्रहण संस्कार को छोड़कर। इसके पीछे शास्त्रीय आर्षतर्क है कि पुष्यनक्षत्र अतिसुभबलवता होने के कारण वैवाहिक नक्षत्रादि-शुभता दुर्बल हो जाती है अतः वैवाहिक नक्षत्र में पुष्य का परिगणन नहीं है। शेष अशेष सुभकार्यों के मुहूर्त निर्णय में पुष्य का आदरणीय स्थान है। विशेष रूप से तन्त्रशास्त्रों में मात्र पुष्य नक्षत्र का ही प्रयोग किया गया है। मन्त्रमहार्णवादि तन्त्रशास्त्र में दो मुहूर्त को विशेष स्थान दिया गया है- रवि-पुष्ययोग तथा गुरुपुष्य-योग। दोनों में मात्र पुष्य ही योगकारक है। रविपुष्ययोग वर्ष में दो-तीन बार ही मिलते हैं। इस योग में सविधि सादर बिल्वमूल का प्रयोग कर सर्वारिष्टनाशकारी होता है। गुरुपुष्ययोग में सविधि सादर अपामार्ग तथा बाँधागोभी का मूल एकसाथ बाँधने से सौभाग्य की वृद्धि होती है। इस तरह पुष्य नक्षत्र सर्वथा प्रशस्त है।

पौष मास को लेकर भ्रान्ति

एक भ्रान्ति बहुकाल से सर्वथा प्रवृत्त है कि इस मास को खरमास कहकर निन्दनीय माना गया है। इसके पीछे काल्पनिक तर्क संचार है। यथा वर्ष में दो मास खरमास संज्ञक लोकव्यवहृत है। पहला पौषमास तथा दूसरा चैत्र मास। इसका तथाकथित विद्वज्जन तर्क प्रस्तुत करते हैं कि बृहस्पति ग्रह आत्माकारक है सूर्य जब धनुराशि तथा मीनराशि पर संक्रमित होते हैं तब क्रमशः पौषमास तथा चैत्रमास अग्रसर होते हैं। ग्रहाधीश सूर्य के धनु-मीन पर संक्रमित होने से धनु-मीन के स्वामी गुरु आत्महीन हो जाते हैं। अतः पौष-चैत्र मास खरमास कहलाता है जो विवाहादि के योग्य नहीं रहता है।

खरमास किसे कहते है?

इससे मैं सहमत नहीं हूँ। जब पुष्य नक्षत्र महिमा में यह उल्लेख है कि **पापैर्विद्धे युते हीने चन्द्रताराबलेऽपि च।** अर्थात्

पुष्य नक्षत्र पापविद्ध, पापयुत तथा चन्द्रतारा के बलहीन होने पर भी सर्वकामसिद्धिकारक होता है तब उक्त तर्क अस्तित्वहीन हो जाते हैं। अतिबलवत्ता के कारण पौषमास में विवाहादि वर्जित है। चैत्रमास में तो ब्राह्मणों का उपनयन संस्कार विशेष प्रशस्त हितकारी माना है। अतः इसे खरमास कहने के पीछे जो निन्दनीय भाव है वह अज्ञानमूलक अशास्त्रीय है। जैसे शतं जीव के स्थान पर शन्तन जीव का प्रयोग अज्ञानमूलक है। उसी प्रकार खर शब्दार्थ के अज्ञात होने के कारण निन्दनीय अग्रसर है।

खरमास शब्द का वास्तविक अर्थ

खरमास शब्द जो खर शब्द है, वह वास्तव में संस्कृत का 'खल' शब्द है, जो सामान्य रूप से दुष्ट के अर्थ में व्यवहार किया जाता है। लेकिन इसका दूसरा अर्थ भी है। प्रायः सभी तत्सम शब्द एकार्थक सह अनेकार्थक भी होते हैं। खल शब्द भी मुख्यतया दुष्टवाचक होते हुए अनेकार्थक है। संचयार्थक खल् धातु से अच् प्रत्यय करने पर 'खल' शब्द की सिद्धि होती है, जिसका अर्थ होता है- संकलन करना। मेदिनीकोष के अनुसार "खलः कल्के भुवि स्थाने क्रूरे कर्णेजपेऽधमे।" इस प्रकार खल शब्द कल्क अर्थात् चूर्ण के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। धान आदि का संग्रह, उसे झाड़ना आदि खल शब्द से अभिप्रेत है। 'हायन' शब्द- अथ हायनाः। वर्षार्चिर्व्रीहिभेदाश्च (अमरकोष- 3.1.108) के अनुसार वर्ष, किरण एवं नीवार मानक धान्य के लिए प्रयुक्त होता है। एतावता खलहायन शब्द रूप संयोजन से संचय करने की भूमि का अर्थ निकलता है। वहीं खलहायन शब्द कालान्तर खलिहान रूप में लोकव्यवहृत होने लगा है। पौष मास में खलिहान की उपयोगिता सिद्ध होती है। एतावता खरमास, खलमास, खलिहान- ये सभी शब्द धान के संरक्षण-संचय का अर्थ देते हैं। इसका काल खरमास कहलायेगा। इस प्रकार, खरमास संस्कृत का शब्द न होकर देशज शब्द है। भ्रान्तिवश लोगों ने इसे तत्सम शब्द मान लिया और इसका अर्थ गदहा, रुक्ष, कठोर आदि के रूप में लेकर इस मास को गर्हित मान लिया।

शब्दस्वरूप संचरण में शास्त्रीय या लौकिक कारण तो अवश्य ही होगा। इसी आधार पर भाषाविज्ञान अस्तित्वधारी है। धान्यसंरक्षण को ही अभिप्रेत कर शास्त्रीय कृत्यों का वर्जन ऋषियों की दूरदर्शिता का परिचायक है।

खरमास में वर्जित कार्य

गार्ग्य के वचन को बृहद्दैवज्ञरंजन नामक ज्यौतिष ग्रन्थ में इस प्रकार उद्धृत किया है-

मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्तुरङ्गमे।
क्षौरमन्नं न कुर्वीत विवाहं गृहकर्म च।।

अर्थात् मीन, धनु एवं सिंह में जब सूर्य रहें तब क्षौरकर्म(प्रथम क्षौरकर्म-मुण्डन), अन्नप्राशन, विवाह, गृहनिर्माण कार्य नहीं करना चाहिए। इस निषेध मास से पौष मास का धार्मिक अर्हता हीन होना गलत है।

खरमास में क्या करें?

वैसे तो आत्मकल्याणधर्म कभी भी किसी भी क्षण में वर्जित नहीं है जब मृत्यु का निश्चय नहीं है तो आत्मस्वरूपप्रापक धर्म का वर्जन कही नहीं है- सततं मामनुस्मर युद्धस्व च। गीता कहती है- हे अर्जुन मुझे सतत समरण करो।

न धर्मकालः पुरुषस्य निश्चितः न चापि मृत्युः पुरुषं प्रतीक्षते।
सदा नरो मृत्युमुखेभिधत्ते सदा हि धर्मस्य क्रियैव शोभना।। (व्यास)

यह तो आत्मकल्याण धर्म विषय निर्णायक वचन है। इसके अतिरिक्त भी कुछ लौकिक धर्मानुष्ठान 'निर्णयसिन्धु' में विहित है। पृष्ठसंख्या- 316, पंक्ति 10

कल्पतरौ भविष्ये
पौषे मासि यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत्।

तस्यां स्नानं जपो होमस्तर्पणं विप्रभोजनम्।।
मत्प्रीतये कृतं देवि शतसहस्राधिकं भवेत्।
अत्रैव रोहिण्यामार्द्रायोगो पुण्यमत्त्वं ज्ञेयम्।।

भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी से कह रहे हैं हे देवि पौषमास शुक्लपक्ष अष्टमी तिथि बुधवार के समवेत होने पर गंगास्नान, जप, होम, तर्पण, विप्रभोजन मेरी प्रसन्नता के लिए जो करे उसे लक्षगुणा फल मिलता है। अल्पकाल में इतना पुण्यसंग्राहक व्रत सम्प्रति लोक में व्यवहृत न होना अनवधानता है। पंचाङ्गों में इसका उल्लेख होना चाहिए। उक्त तिथि में यदि रोहिणी-आर्द्रा नक्षत्र का संयोग हो जाये तो अगणित पुण्य का संचार होता है। तो क्यों खरमास से निन्दनीयता का दुबोध

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोः।
अर्धोदयः स विज्ञेयो कोटिसूर्यग्रहैः समः।।

अर्थात् पौष तथा माघ मास की अमावस्या व्यतीपात योग तथा श्रवणा नक्षत्र से युक्त हो तो सूर्यग्रहण समान फलदायक होता है। कितना विलक्षण योग है, जिसका उपयोग आज नहीं हो रहा है।

धर्मसिन्धु में पौषमास में विशेष विहित धर्म का उल्लेख नहीं है। मात्र मकर संक्रान्ति निर्णय की चर्चा है। वह तो सर्वत्र व्यापक है। वर्षकृत्य प्रथम भाग में पौषमास कृत्य में अर्द्धोदय योग की चर्चा है। वहाँ पर विशेष प्रमाण के साथ संचरित है, यथा-

स्कान्दे-
अर्धोदये तु सम्प्राप्ते सर्वं गंगासमं जलम्।
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः।
यत्किञ्चिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्।

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि अर्धोदय योग होने पर सभी नदियों के जल गंगाजल के समान माने जाते हैं तथा सभी द्विज शुद्ध आत्मा वाले ब्रह्म के मान माने जाते हैं। अर्थात् इस मास में दान देते समय दान के पात्र का विचार नहीं करना चाहिए। सभी दान के पात्र हो जाते हैं। इस काल में जो कुछ भी दान किया जाता है वह मेरु पर्वत के समान विशाल हो जाता है।

इस तरह पौषमास पुष्यता का आलेख विद्वज्जन के समक्ष उपस्थापित है। इसका कुछ आधार शाब्दिक है, कुछ शास्त्रीय है अतः यह सर्वमान्य आदरणीय होना चाहिए। शाब्दिक विवेचन का आधार प्राज्ञमनीषा का विवेच्य विषय है। लोकव्यवहार देखकर वह भाव अग्रसर हुआ है। कम से कम पौष मास में शात्रविहित कर्म का लौकिक प्रयोग होना चाहिए। पौष पूर्णिमा में कौशिकी स्नान का भी महत्त्व है। मिथिला में इसका प्रयोग होता है।

अन्त में माननीय सम्पादक श्री भवनाथ झाजी को अन्ततः साधुवाद देता हूँ, जो प्रच्छन्न विषयों का चयन कर लेखकों को प्रवृत्त करते हैं।

***

पौष मास में अर्द्धोदय योग

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोः।
अर्धोदयः स विज्ञेयो कोटिसूर्यग्रहैः समः।।

अर्थात् पौष तथा माघ मास की अमावस्या व्यतीपात योग तथा श्रवणा नक्षत्र से युक्त हो तो सूर्यग्रहण समान फलदायक होता है। अर्धोदय योग होने पर सभी नदियों के जल गंगाजल के समान माने जाते हैं तथा सभी द्विज शुद्ध आत्मा वाले ब्रह्म के मान माने जाते हैं। अर्थात् इस मास में दान देते समय दान के पात्र का विचार नहीं करना चाहिए। सभी दान के पात्र हो जाते हैं। इस काल में जो कुछ भी दान किया जाता है वह मेरु पर्वत के समान विशाल हो जाता है।

डा. लक्ष्मीकान्त विमल

'कृत्यरत्नाकर' के आलोक में पौषमास

पौराणिक-साहित्य में उल्लिखित कृत्य वस्तुतः हमारी दिनचर्या को नियमबद्ध करते हैं। प्रत्येक मास के सन्दर्भ में व्रतों, भोज्य पदार्थों, देवताओं को अर्पित किये जाने वाले नैवेद्यों का वर्णन ऋतु के अनुसार हमारे भोजन को संयमित करते हैं। इन कृत्यों का संकलन वर्षकृत्य, कृत्यरत्नाकर, कृत्यसार, 'कृत्यकल्पतरु' , व्रतखण्ड आदि के रूप में अनेक शास्त्रकारों ने किया है। यहाँ मिथिला के 14वीं शती के सान्धिविग्राहिक मन्त्री म.म. चण्डेश्वर कृत 'कृत्यरत्नाकर' में वर्णित पौष मास के कृत्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। इस प्रकार के वर्णनों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन हमारी परम्पराओं

आत्मज्ञान में अनेक साधनों का वर्णन दर्शन के ग्रन्थों में, धर्मशास्त्र में, पुराण में और ब्राह्मणग्रन्थों में विस्तार से मिलता है। **वेदान्तसार** के रचयिता सदानन्द ने अन्तःकरण की शुद्धि को परम लक्ष्य माना है; क्योंकि अन्तःकरण ही आत्मसाक्षात्कार में अथवा मोक्ष में द्वार है। सामान्यजन पुराणों के पाठ से, देवताओं की विविध प्रकार की अर्चनाओं से, जप से उस परमतत्त्व को प्राप्त करते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं को कर्म की कोटि में रख कर ज्ञान की प्रधानता को स्वीकार किया गया है। ज्ञानमार्गियों ने इन पूजा विधाओं को द्वितीयक श्रेणी में रखा है। शास्त्राध्ययन में आवृत्ति का मुख्यस्थान था और विद्वानों में प्रचलित था। कहा भी जाता है कि **'आवृत्तिः सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी'**। ज्ञान को ऊपर दिखला कर कर्मस्वरूपात्मक शास्त्रीय व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है।

दूसरे पक्ष ने अर्थबोध पर जोड़ दिया कि सामान्यजन यदि **रामायण** का शाब्दिक अर्थ नहीं जानता है, तो वह फल का भागी नहीं होगा। बिना अर्थ जाने भी **रामायण** आदि का पाठ फलप्रद होता है। इस पथ पर भी चोट किया गया। व्रत, दान और भक्ति एक ही अर्थ का द्योतक है। भारतीय आचार्यों ने सम्पूर्ण वर्ष के कृत्य को पर्व अथवा व्रत के माध्यम से उपस्थापित किया है।

मास के माहात्म्य में पुण्यमास के रूप में कार्तिक, माघ एवं वैशाख का एकछत्र राज्य है। परन्तु अन्य मास भी न्यून नहीं है। इस दृष्टि से पौषमास का माहात्म्य प्रस्तुत करना इस पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

मिथिलामहीमण्डल में महापण्डित चडेश्वर ठाकुर ने अनेक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जिनमें 'कृत्यरत्नाकर' मुख्य है। **कृत्यरत्नाकर** के आधार पर ही यहाँ पौषमास के माहात्म्य का वर्णन अपेक्षित है। श्रीमान् चण्डेश्वर ठाकुर ने रत्नाकर नामान्त ग्रन्थों की शृंखला लिखी थी। जो इस प्रकार हैं-

1.कृत्यरत्नाकर
2. गृहस्थरत्नाकर,
3. दानरत्नाकर,
4. पूजारत्नाकर,
5. शुद्धिरत्नाकर और
6.विवादरत्नाकर।
7. व्यहाररत्नाकर

श्रीकृत्य-दान-व्यवहार-शुद्ध-पूजा-विवादेषु गृहस्थकृत्ये।
रत्नाकराः धर्मभुवो निबन्धाः कृतास्तुलापूरुषदेन सप्त॥[1]

1. चण्डेश्वर ठाकुर, **विवादरत्नाकर,** कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ, एसियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1931 पृ. 676,

*मूलतः भारतीय दर्शन के परम्परागत अध्येता, वरिष्ठ शोधाध्येता ,श्री शंकर शिक्षायतन ,नई दिल्ली।

चण्डेश्वर ठाकुर का समय एवं पिता

चण्डेश्वर ठाकुर के पिता का नाम वीरेश्वर ठाकुर एवं पितामह का नाम दैवादित्य ठाकुर है। ये दोनों विद्वान् मिथिला के कर्णाटवंश के राजा हरसिंह देव के राज्य में महामन्त्री थे एवं चण्डेश्वर ठाकुर स्वयं इसी राज्य में सान्धि-विग्रहिक पद पर आरूढ़ थे। सान्धि-विग्रहिक का अर्थ होता है शान्ति और युद्ध सम्बन्धी मन्त्री। इनका समय 14 वीं शताब्दी निर्धारित होता है। इन्हीं के वंश में विद्यापति ठाकुर प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने आश्रयदाता नरसिंह देव का वर्णन इन शब्दों में किया है-

अस्ति श्रीहरसिंहदेवनृपतिर्निःशेषविद्वेषिणां
निर्माथी मिथिलां प्रशासदखिलां कर्णाट-वंशोद्भवः।
आशाः सिञ्चति यो यशोभिरमलैः पीयूषधारोद्भवै-
र्देवः शारदशर्वरीपतिरिवाशेषप्रियं भावुकः॥[2]

अर्थात् कर्णाट वंश में उत्पन्न, सभी शत्रुओं को मथनेवाले, श्रीहरसिंहदेव राजा ने सम्पूर्ण मिथिला पर राज्य किया, जिनके निर्मल यश से चारों दिशाएँ सींची गयी थी।

कृत्यरत्नाकर का अध्याय विभाजन

इस कृत्यरत्नाकर में 22 तरङ्ग है। यहाँ तरङ्ग अध्याय का वाचक शब्द है। पहले तरङ्ग में धर्मनिरूपण, दूसरे में परिभाषा, तिसरे में मासपरिस्थिति, चौथे से पन्द्रह तक बारहों महीने के मासक्रम से वर्णन है। सोलहवें में मलमास, सत्रहवें में विविध विषय से सम्बन्धित प्रकीर्ण विषयों को प्रस्तुत किया गया है। अठारहवें में वारिविधितरङ्ग और व्रतविधितरङ्ग है, जिसमें विशिष्ट साप्ताहिक विषयों को समाहित किया गया है एवं व्रतों के विषयों को समाहित किया गया है। उन्नीस एवं बीसवें में संक्रान्ति से सम्बन्धित विषयों को रखा गया है। इक्कीसवें में अमावस्या का महत्त्व बतलाया गया है। बाईसवें तरङ्ग में ग्रहण को विस्तार से समझाया गया है।[3]

स्वरूपफलमानेभ्यो निमित्ताच्च विधीयते।
अभीष्टफलदस्यात्र धर्मस्यादौ निरूपणम्॥

परिभाषा ततः प्रोक्ता ततो मासपरिस्थितिः।
अथाऽत्र-चैत्र-वैशाखी ज्येष्ठाषाढी ततः परम्॥

ततश्च श्रावणो भाद्र आश्विनः कार्तिकस्तथा।
मार्गः पौषश्च माघश्च फाल्गुनः परिकीर्तितः॥

मलमासव्यवस्थापि तरङ्गोऽस्य ततः कृतः।
प्रकीर्णकञ्च वाराणां व्रतादि-विधि-विस्तरः॥

रवि-सङ्क्रान्त्यमावास्या-ग्रहणस्थितयस्तथा।
व्रतादि-तिथिवेधादि - व्यवस्थितिरनन्तरम्।
एवमागमविज्ञेन श्रीचण्डेश्वर-मन्त्रिणा॥

2. चण्डेश्वर ठाकुर, कृत्यरत्नाकर, प्रारम्भिक श्लोक 4, कमलाकर स्मृतितीर्थ (सम्पा.), कोलकाता, 1925ई., पृ. 2.
3. तदेव, पृ. 7

द्वाविंशतितरङ्गाणां कृत्यरत्नाकरे कृता।
तत्र प्रवृत्यौपयिकं धर्मनिरूपणं स्वरूपतः॥

पौषमास में एकादशी का महत्त्व

पौषमास के शुक्ल पक्ष के एकादशी तिथि को व्रत रखना चाहिए और द्वादशीतिथि को विष्णु भगवान् की पूजा करनी चाहिए। त्रयोदशी तिथि को यात्रा करना चाहिए एवं चतुर्दशी तिथि को उपवास रख कर पूर्णिमा तिथि को अपनी क्षमता के अनुसार विस्तार पूर्वक विष्णु की आराधना की व्यवस्था प्रतिपादित है।

पौषे मास्यथ शुक्लायामेकदश्यामुपोषितः।
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं देवं नारायणं हरिम्॥
यात्रा कार्या त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोष्य च।
पौणमास्यां यजेद्विष्णुं तथा विभव-विस्तरैः॥[4]

पौषमास में शिव की रथयात्रा

प्रायः इस समय भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा की ही प्रसिद्धि है। परन्तु इस कृत्यरत्नाकर में भगवान् शिव की रथयात्रा का विस्तार से वर्णन मिलता है। शिव के लिए यह रथयात्रा पौषमास के शुक्लपक्ष के अष्टमी तिथि को मनाने का विधान है। शिवरथयात्रा के उत्सव के समय पाशुपत मत में निष्णात विद्वानों को, शिव के भक्तों को, निर्धनों को, अनाथों को, कृपण को एवं ब्राह्मणों को भोजन करा कर के भगवान् शिव को रथ पर स्थापित करने का विधान है। इस उत्सव के समय आग में तिल और पलाश की लकड़ी से हवन करने का विधान है। सम्पूर्ण नगर में उस शिवरथ को दर्शन के लिए भ्रमण कराया जाता है। नृत्य, रात्रि में जागरण और विविध प्रकार से महोत्सव मनाने का विधान है। जो इस शिवरथयात्रा का महोत्सव मनाता है वह शिवलोक को एवं शिव का रूप प्राप्त कर लेता है।

पौषे मासि सिते पक्षे अष्टम्यां विधिपूर्वकम्।
पूजयित्वा महादेवं गन्धपुषोपहारतः॥
महापाशुपतान् विप्रान् शैवांश्च विधिवद्द्विजान्।
भोजयित्वा यथाशक्त्या देवमारोपयेद्रथम्॥

पौष मास के शुक्लपक्ष में अष्टमी तिथि को विधानपूर्वक चन्दन और फूल चढ़ाकर महादेव की पूजा कर पाशुपत परम्परा के साधुओं को, विप्रों को तथा शैव साधुओं की यथाशक्ति भोजन कराकर देवता को रथ पर चढ़ावें।

दीनाननाथकृपणान् ब्राह्मणांश्च विशेषतः।
भोजयेत् पूजयेच्छक्त्या नानाभक्ष्यैर्विधानतः॥

गरीबों, अनाथों तथा अभावग्रस्तों को विशेष रूप से ब्राह्मणों को अपनी शक्ति भर अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ खिलावें तथा उन्हें प्रणाम करें।

तिलान् पलाशसमिधो जुहुयात् पावके तथा।
कृत्वा तु सघृतं वीर देवमारोपयेद्रथम्॥

हे वीर, तिल, पलाश की समिधा को घृत के साथ मिलाकर अग्नि में हवन करें। तथा इसके बाद देवता को रथ पर चढ़ावें।

4. तदेव, पृ. 482

कुर्यात् प्रजागरं तत्र नानाप्रेक्षणकैर्द्विज।
परिव्राजकवर्गैस्तु नृत्यमानैश्च सर्वशः।।

इस अवसर पर अनेक प्रकार के दृश्य कार्यक्रमों जैसे- नृत्य, गीत, नाटक आदि के साथ जागरण करना चाहिए। संन्यासियों को इस अवसर पर नृत्य करना चाहिए।

एवं महोत्सवं कृत्वा यामिन्यर्धं वरानने।
कृष्णाष्टम्यान्ततः पौषे देवं तं भ्रामयेत् पुरम्।।

इस प्रकार महोत्सव के साथ कृष्णपक्ष की अष्टमी की आधी रात में देवता को नगर में घुमाना चाहिए।

नानाप्रेक्षणकैर्विप्र ब्रह्मघोषैश्च सर्वशः।
वृन्दैः पाशुपतानां च नृत्यमानैः समन्ततः।।
रथैः विप्र-ध्वज-च्छत्रैः किङ्किणीरविकान्वितैः।
वितान- ध्वज - मालाभिर्घण्टा- चामर- दर्पणैः।।
शङ्ख-भेर्यादि - निर्घोषैर्गेयरङ्ग- समाकुलम्।
लेप्य दारुमयैर्यन्त्रैर्मातृरक्षोगणादिभिः।।
उद्यान - खात - पानाद्यैर्महोत्सव - समन्वितैः।
महाजनपदाकीर्णं यथावैभवकल्पितम्।।

हे विप्र, अनेक प्रकार के दृश्य-विधानों के साथ शंखघोष करते हुए चारों ओर नाचते हुए पाशुपताचार्यों के साथ, रथ, ब्राह्मण, ध्वज, छत्र, घुंघरू झनकारती स्त्रियाँ, चँदोवा, पताका, माला, घंटा, चँवर, आइना, शंख, भेरी, आदि की ध्वनि, गीत-नाद आदि से भरे हुए, अंगराग लगाते हुए, लकड़ी के यंत्रों से युक्त होकर मातृदेवियों तथा राक्षसों के साथ, बगीचा, तालाब, कूप आदि के चित्रों, के साथ यह रथयात्रा यथाशक्ति विशाल जनपद तक निकालनी चाहिए।

सर्वदा दानपुण्यानि सर्वदानफलानि च।
अत्युग्रतपसां पुण्यं सर्व-यज्ञ-फलानि च।।
लभते च नरः श्रीमान् शिव-यात्रा-प्रवर्तनात्।
शिवलोके महाभाग शिववन्मोदते सदा।।[5]

अर्थात् मनुष्य इस शिवयात्रा करने से प्रतिदिन दान करने तथा एवं सब कुछ दान करने के पुण्यों का फल, अति उग्र तपस्या का फल, सभी यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं और हे महाभाग, शिवलोक में शिव के समान सुख प्राप्त करते हैं।

पौषमास में पितृश्राद्ध का महत्त्व

इस मास में केवल देवताओं की पूजाओं का ही विधान नहीं है अपितु पितर की पूजा भी अभीष्ट है। पितृपूजा महामाङ्गलिक होता है। गृहप्रवेश, विवाह, उपनयन आदि पवित्र शुभकार्य में भी नान्दीमुखश्राद्ध का विधान है। जिसका पालन अभी भी मिथिला के क्षेत्र में होता है। इस कृत्यरत्नाकर ग्रन्थ में पौषमास में अन्वष्टका श्राद्ध का विधान प्रतिपादित है।

पौषमास में दान का महत्त्व

शुक्लपक्ष में पुष्प का दान एवं पौषकृष्ण पक्ष में फलदान का विशेष महत्त्व उल्लिखित है। इस मास में यद्यपि पूजा योग्य

5. तदेव, पृ. 480-81.

पुष्पों का अभाव हो जाता है अत एव पुष्पदान का महत्त्व प्रासंगिक है। ऋतुफलों में भी इस मास में फल का अभाव रहता है। अत एव फल का दान भी समाजोपयोगी है। इस मास में स्वर्णदान का उल्लेख किया गया है।

तत्र विष्णुधर्मोत्तरे

पौषे कनक-दानेन परां तुष्टिं तथैव च।
पुष्पाणां च सिते पक्षे दानं लक्ष्मीकरं स्मृतम्॥
फलानां च तथा दानं कृष्णपक्षे महाफलम्। [6]

अर्थात् विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि पौष मास में स्वर्णदान करने से परम सन्तुष्टि होती है तथा शुक्लपक्ष में फूलों के दान करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कृष्णपक्ष में फलों के दान से महान् फल प्राप्त होते हैं।

दान के क्रम में महल का, नगर का, गृह का दान करने से भगवान् नारायण सन्तुष्ट होते हैं।

वामनपुराणे

प्रासाद - नगरादीनि गृह-प्रावरणानि च।
नारायणस्य तुष्ट्यर्थं पौषे देयानि नित्यशः॥[7]

वामन पुराण में कह गया है कि महल, नगर, घर, ओढ़ने की वस्तुओं का दान नारायण की तुष्टि के लिए प्रतिदिन करना चाहिए।

पौषमास में नर्मदास्नान का महत्त्व

इस मास में नर्मदा नदी में स्नान करना और इसी नदी के तट पर दान आदि शुभ कर्म करने का विधान है।

पौषे तु नर्मदा पुण्या स्नान-दानादि-कर्मणि।[8]

सूर्यव्रत का महत्त्व

भगवान् सूर्यदेव के निमित्त इस मास में जो कोई साधक दिन में एक बार भोजन करता है। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के सप्तमी तिथि तक उपवास रखता है। प्रातःकाल, मध्याह्न में एवं सन्ध्या में इन तीनों समय में जो भगवान् सूर्य का विधिपूर्वक पूजन करता है। वह सूर्यलोक को जाता है तथा सूर्य में लीन हो जाता है। भविष्य पुराण में सुमन्तु की उक्ति को कृत्यरत्नाकर में इस प्रकार उद्धृत किया गया है-

हन्त! ते संप्रवक्ष्यामि सूर्यव्रतमनुत्तमम्।
पौषे मासे तु संप्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम्॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी स्वाती- गोधूम-गोरसैः।
पक्षयोः सप्तमीं यावदुपवासेन यो नयेत्॥
त्रिसन्ध्यमर्चयेद्भानुं शाण्डिलेयं च सुव्रत।
अधःशायी भवेन्नित्यं सर्व-भोग-विवर्जितः॥

मैं अब सूर्य का एक विशिष्ट व्रत का वर्णन करता हूँ। पौष मास आने पर सत्य बोलने का पालन करते हुए दिनभर व्रत रखकर सन्ध्या होने पर स्वाती, गेहूँ तथा दूध के साथ जो एकबार ही भोजन करना चाहिए। इस प्रकार दोनों पक्षों की सप्तमी पर्यन्त उपवास करें और तीन सन्ध्या शाण्डिल्य के वंशज तथा सूर्य की उपासना करें। इस प्रकार प्रतिदिन भूमि पर शयन करना चाहिए।

6. तदेव, पृ. 474 7. तदेव, पृ. 474 8. तदेव, पृ, 475

मासि पूर्णे तु सप्तम्यां घृतादिभिररिन्दिम।
कृत्वा स्नानं महापूजां सूर्यमन्त्रेण भारत॥
नैवेद्यमोदनप्रस्थं क्षीर-सिद्धं निवेदयेत्।
भोजयित्वा द्विजानष्टौ सूर्यभक्तान् सुसामगान्॥
गां च दद्यान् महाराज ! कपिलां भास्कराय तु।

अर्थात् हे शत्रुसंहारक राजा, इस प्रकार मास बीत जाने पर सप्तमी के दिन घृत आदि से सूर्य का स्नपन कर सूर्य के मन्त्र से महापूजा करनी चाहिए। दूध में पकाकर एक पसेरी चावल का नैवेद्य बनाकर अर्पित करना चाहिए और आठ सामवेद गानेवाले आठ सूर्यभक्त द्विजों को बुलाकर (छन्दोग शाखा के ब्राह्मण 'सामग' कहलाते हैं) कपिल रंग की गाय भी भास्कर को सुर्पित कर दान करना चाहिए।

य एवं कुरुते पुण्यं सूर्य-व्रतमनुत्तमम्॥
तस्य पुण्य-फलं वच्मि सर्व-काम-समन्वितम्।
सूर्य-कोटि-प्रतीकाशैर्विमानैः सर्वकामिकैः॥
अप्सरोगण - सङ्कीर्णैर्महाविभव—विस्तरैः।
स सङ्गीत -नृत्य - वाद्यैर्गन्धर्व-गण-शोभितैः॥
दोधूयमानं चमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः।
सहस्र - किरणाद्धानोर्धनैश्वर्य - समन्वितः॥
स याति परमं स्थानं यत्रास्ते रविरंशुमान्।

अर्थात् जो इस विधि से इस विशिष्ट सूर्यव्रत को करते हैं उन्हें प्राप्त होनेवाले फलों का वर्णन करता हूँ। वे विमान से परम पवित्र स्थान जहाँ सूर्यदेव रहते हैं, वहा चले जाते हैं। वह विमान सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। उस विमान पर अप्सराएँ भरी रहतीं हैं तथा विशाल वैभव का प्रसार रहता है। सुर और असुर स्तुति करते हुए चँवर डुलाते रहते हैं। सूर्यदेव के हजारों किरणों से वह धन और ऐश्वर्य से परिपूर्ण रहता है।

रोम-संख्या तु या तस्यास्तत्प्रसूति-कुले तथा॥
तावद्युग - सहस्राणि स्वर्ग-लोके महीयते।
त्रिःसप्त-कुलजैः सार्धं भोगान् भुक्त्वा यथेप्सितान्।
ज्ञानयोगं समासाद्य सूर्यस्यालयं व्रजेत्॥ [9]

उनके शरीर में रोम जितने रोएँ हैं, उनकी संख्या के बराबर हजार युगों तक उनके वंशज स्वर्गलोक में वास करते हैं। वे 21 पीढ़ी तक के वंशजों के साथ इच्छित भोग भोगकर ज्ञानयोग प्राप्त कर सूर्य के धाम को जाते हैं।

यहाँ ध्यातव्य है कि ये फलश्रुतियाँ अर्थवाद हैं, जो केवल आकृष्ट करने के लिए कही जातीं हैं। इनके उल्लेख का अर्थ इतना ही है कि यह सूर्यव्रत पुण्यकारक तथा खीर और तिल के भोजन से पुष्टिकारक होता है।

पौष मास में देवी आराधना

पौष मास में साधक इन्द्रियों को संयमित कर के सत्य वचनों का व्यवहार करते हुए इच्छा और क्रोध से रहित होकर दिन भर उपवास को रख कर रात्रि में एक बार मात्र भोजन करें। दोनों ही पक्षों की नवमी तिथि तक यह व्रत करना चाहिये। इस महाव्रत के समय प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल पूजा करनी चाहिए। जमीन पर ही सोना चाहिए। कुमारी कन्या को भोजन

9. तदेव, पृ. 477

कराना चाहिये। इस व्रत को करने का महाफल यह है कि साधक जहाँ भगवती चण्डिका रहती है वहाँ पहुँच जाता है और देवी के स्वरूप में लीन हो जाता है।

पौषे मासि तु संप्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनम्।
जितेन्द्रियः सत्यवादी काम-क्रोध-विवर्जितः॥
पक्षयोर्नवमीं यावदुपवासेन पालयेत्।
त्रिकालं पूजयेदार्यां गन्ध-पुष्पोपहारतः॥
कृत्वाग्नि-कार्यं विधिवद्भूमौ शय्यां प्रकल्पयेत्।

अर्थात् पौष मास आने पर दिनभर व्रत कर सन्ध्या बीत जाने पर एकबार ही भोजन करें, जितेन्द्रिय होकर रहें, सदा सत्य बोलें, काम एवं क्रोध का परित्याग करें। इस प्रकार दोनों पक्षों में नवमी पर्यन्त उपवास करते हुए तीनों कालों में देवी की पूजा चन्दन, फूल आदि से करें। हवन का विधान कर विधिपूर्वक भूमि पर शयन करें।

मासान्ते स्नपनं कुर्याद्भगवत्यै घृतादिभिः॥
कृत्वा ध्यानं महापूजां चण्डिकायै प्रकल्पयेत्।
नैवेद्यं तण्डुलप्रस्थं क्षीरसिद्धं निवेदयेत्॥
कुमारीः भोजयित्वाष्टौ विप्रान् भागवतांस्तथा।
कृत्वा पिष्टमयीं देवीं नाम्ना चार्येति पूजयेत्॥
चतुर्भुजां शूलधरां कुन्द-पुष्पैः सगुग्गुलैः।
स्नानं कृत्वा तिलैर्विप्र तिलानां प्राशनं तथा॥
गच्छेद्दुर्गापुरं रम्यं यत्रास्ते चण्डिका स्वयम्॥[10]

अर्थात् मास का अन्त होने पर घृत आदि से देवी का अभिषेक कर चण्डिका की पूजा विस्तार से करें। एक पसेरी चावल का खीर पकाकर नैवेद्य के रूप में अर्पित करें। आठ कुमारियों को भोजन कराकर, ब्राह्मणों तथा भगवद्भक्तों को भी भोजन करावें। पीठी से देवी की आकृति बनाकर *आर्यायै नमः* इस प्रकार के मन्त्रों से पूजन करें। चार भुजाओं वाली शूलधारण करनेवाली देवी की पूजा कुन्द के फूल से तथा गुग्गुल के धूप से करनी चाहिए। तिल के तेल से स्नान कर तिल का भक्षण भी करें। वे दुर्गा के धाम को जाते हैं, जहाँ स्वयं चण्डिका का वास होता है।

वस्तुतः हरिस्मरण में समय आदि का विचार नहीं करना चाहिए। जब भी मनुष्य में भगवान् को स्मरण करने की इच्छा होती है उसी समय स्मरण अथवा पूजा विहित है। परन्तु सामान्यजन के लिए नियम एवं फल आदि की कल्पना भगवान् के श्रीचरणारविन्द में प्रवृत्ति की एक विधा है। भगवान् ने गीता में यही कहा है कि **'सततं कीर्तयन्तो माम्'**[11] हमेशा हमें (कृष्ण) स्मरण करो। जिस क्षण भगवान् का स्मरण नहीं होता है वह क्षण युग के समान प्रतीत होता है उत्तम भक्त को, ऐसा भागवत में 'त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्'[12] कहा गया है।

***

10. कृत्यरत्नाकर पृ. 477
11. गीता 9.14
12. भागवतमहापुराण, 10.31 गोपीगीत

खरमास : एक सिंहावलोकन

डॉ. रामाधार शर्मा*

"शास्त्रों के अनुसार सूर्य आत्मा का कारक ग्रह है और गुरु परमात्मा का स्वरूप है। सूर्य के गुरु की राशि में आने पर अथवा गुरु के सूर्य की राशि में आने पर आत्मा से परमात्मा का मिलन होता है। ऐसी उत्कृष्ट दशा में यदि हम लौकिक कर्म (ईश्वराराधन आदि छोड़कर) करते हैं, तो मूल विन्दु से हटकर हमलोग लौकिक कर्म में फँस जाते हैं और अन्तम परिणति की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं।"

भारत एक धर्मप्राण सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, एवं व्रत पर्व तथा उत्सवों का देश है। यहाँ वर्ष भर पर्व, उत्सव एवं विभिन्न कार्यक्रम मौसम तथा समयानुरूप निर्धारित होकर चैत्रादि मासों में आयोजित होते रहते हैं जिससे मानव जीवन एवं समाज में निरंतरता और उत्साह बना रहता है। यहाँ की संस्कृति अतीत को स्मरण में रखते हुए वर्तमान में जीवन यापन कर भविष्य को संरक्षित करने की क्षमता रखती है। इसी क्रम में एक शब्द आता है खरमास। खरमास शब्द 'खर' और 'मास' की संधि से बना है। खर का अर्थ होता है रुक्ष, कठोर, खुरदरा आदि और मास का अर्थ होता है महीना। अतः खरमास का सामान्य अर्थ हुआ ऐसा महीना जो रुक्ष हो, खुरदरा हो।

ज्योतिष की दृष्टि में सूर्य के बृहस्पति की राशि (धनु और मीन) में प्रवेश के कारण वर्ष में दो खरमास होते हैं। सूर्य गोचरवशात् जब धनु राशि में प्रवेश करता है तो इसे धन्वर्क या धनुर्मास और जब मीन राशि में प्रवेश करता है तो इसे मीनार्क या मीन मास कहा जाता है। अर्थात् प्रति वर्ष सौर पौष तथा सौर चैत्र मास को खरमास कहते हैं। उत्तराखण्ड में इसे 'मलमास' या 'काला महीना' भी कहा जाता है। हिन्दू धर्म ग्रन्थ में इन पूरे महीनों में कोई भी शुभ कार्य निषिद्ध माना गया है। यह निषेध मुख्य रूप से उत्तर भारत में लागू होता है जबकि दक्षिण भारत में इस नियम का पालन कम किया जाता है। यहाँ तक कि यदि रवि भी सूर्य की राशि (सिंह) में संक्रमण करे तो इसे सिंहस्थ गुरु कहा गया है जिसमें मांगलिक कार्य निषिद्ध माना गया है। इसका आशय ज्योतिषतत्त्वविवेक नामक ग्रन्थ से स्पष्ट है:-

रविक्षेत्रगते जीवे जीवक्षेत्रगते रवौ।
गुर्वादित्यः स विज्ञेयः गर्हितः सर्वकर्मसु॥
वर्जयेत्सर्वकार्याणि व्रतस्वस्त्यनादिकम्॥

अर्थात् सूर्य की राशि में गुरु हो तथा गुरु की राशि में सूर्य संक्रमण कर रहा हो तो उस काल को 'गुर्वादित्य' नाम से जाना जाता है, जो समस्त शुभ कार्यों के लिए वर्जित माना गया है।

प्रश्न यह उठता है कि खरमास में कौन-कौन से कार्य निषिद्ध माने गये हैं और क्यों? महान दैवज्ञ "हरिशंकर सूरी", अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "मुहूर्तगणपति" में विवाह के विहित और त्याज्य मासों की व्याख्या के सन्दर्भ में कहे हैं-

मार्गशीर्षे धनुष्यर्के मीनार्कः फाल्गुनेऽशुभः।
सौरो व्रतविवाहादौ मासः सर्वत्र शस्यते॥

*रामपुर, नौबतपुर, पटना। अवकाशप्राप्त अभियंता, सदस्य, ऐस्ट्रोनॉमिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, भारत सरकार

अर्थात् चान्द्र मासानुसार मार्गशीर्ष और फाल्गुन में विवाह अशुभ होता है और सौर मासानुसार धनु और मीन राशि में सूर्य के रहने पर विवाह अशुभ होता है। श्रीराम दैवज्ञ कृत मुहूर्तचिंतामणि की पीयूषधारा टीका में विवाह के लिए विहित मास की व्याख्या करते समय ऋषि कश्यप का सन्दर्भ देते हुए ज्योतिर्विद् गोविन्द कहते हैं-

उत्तरायणगे सूर्ये मीनं चैत्रं च वर्जयेत्।

अर्थात्- उत्तरायण में भी सूर्य के मीन राशि वाले महीने और चैत्र मास विवाह के लिए वर्जित करना चाहिए। यहीं पर आगे कहते हैं -

मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्त तुरङ्गगमे।
क्षौरमन्नं न कुर्वीत विवाहं गृहकर्म च॥"

अर्थात् मीन, धनु और सिंह राशि में सूर्य के रहने पर मुंडन, अन्नप्राशन, विवाह और गृहनिर्माण सम्बन्ध कार्य नहीं करना चाहिए। वराहमिहिर के अनुसार:

''उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्रादि वधूप्रवेशः तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात्॥"

अर्थात्, सिंह की राशि में जब बृहस्पति हो, तो मुंडन, व्रतबंध, दीक्षा, विवाह, विशेष यात्रा, देवादि प्रतिष्ठा, ये सब शुभ कृत्य न करें। यह भी कहा गया है –

सिंहस्थिते गुरौ राजन् विवाहं नैव कारयेत्।
मकरस्थे न कर्तव्यं यदिच्छेदात्मनः शुभम।
व्रतबन्धं प्रतिष्ठाम् विवाहम् मन्दिरप्रवेशम्।
यात्रां च याम्यदेशे तु कुर्यादार्यो न सिंहांशे॥"

सामान्यतः करणीय और अकरणीय कर्मों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। खरमास में प्रायः सभी काम्यकर्म (जैसे- कुएँ, बावली, तालाब, (बोरिंग) खोदना और उनकी प्रतिष्ठा करना, बाग आदि का आरम्भ और प्रतिष्ठा, किसी भी प्रयोजन के व्रतों का आरम्भ और उद्यापन, जन्म के 6 महीने बाद होने वाले सभी संस्कार जैसे कर्णवेध, मुण्डन, यज्ञोपवीत, समावर्तन, विवाह, वधुप्रवेश, द्विरागमन, तुला आदि के 16 महादान, सोमादि यज्ञ, अष्टका श्राद्ध, गोदान, प्रथम उपाकर्म, वेदारम्भ, नियत कल में बालकों के न किए हुए संस्कार, देवप्रतिष्ठा, प्रथम बार की तीर्थयात्रा एवं देव दर्शन, संन्यास-ग्रहण, अग्निपरिग्रह, राज्याभिषेक, प्रथम बार राजा का दर्शन, अभिषेक, प्रथम यात्रा, चातुर्मासीय व्रतों का प्रथमारम्भ आदि) वर्जित हैं।

क्या करना शुभ होता है?

परंतु अलभ्य योगों के प्रयोग; अनावृष्टि के अवसर पर वर्षा हेतु विहित पुरश्चरण, ग्रहणकालिक स्नान, दान, श्राद्ध, और जपादि, पुत्र जन्म के कृत्य और पितृमरण के श्राद्धादि तथा गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण और अन्नप्राशन संस्कार, नया वस्त्र खरीदना एवं धारण करना, आभूषण-क्रय (परन्तु धारण नहीं), फ्लैट, मकान, नया वाहन और नित्य उपयोग की वस्तुओं को खरीदना और प्रथम बार उपयोग करना भी शुभ होता है। इस महीने में निष्काम भाव से ईश्वर के उद्देश्य से जो व्रत आदि किये जाते हैं उनका अक्षय फल होता है और व्रती के सम्पूर्ण अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं। अतः इस महीने के कृत्य का अक्षय फल होता है।

खरमास में कुछ कर्मों को वर्जित क्यों किया गया?

फलित ज्योतिष के दृष्टिकोण से इसकी व्याख्या कुछ लोग इस प्रकार करते हैं- धनु और मीन गुरु की राशियाँ हैं। जब सूर्य इन राशियों में प्रवेश करता है तब मित्र का गृह होने से उसका मनोबल बढ़ जाता है। सूर्य क्रूर ग्रह है इसलिए बढे मनोबल में वह सामान्य रूप में अनिष्ट करता है। संभावित अनिष्टों से बचने के लिए हम बहुत से मंगल कार्य रोक देते हैं।

एक व्याख्या यह भी है कि जब भी सूर्य, बृहस्पति के साथ गोचर करते हैं तो इससे बृहस्पति का तेज धूमिल हो जाता है। यह स्थिति मलमास कहलाती है। देव गुरु बृहस्पति विवाह के कारक माने गए हैं, उनके अस्त होने से नव-दंपतियों को उनका आशीर्वाद नहीं मिल पाता। इसलिए इस अवधि में विवाह प्रतिबंधित रहते हैं।

वैज्ञानिक कारण

अब वैज्ञानिक कारण की ओर दृष्टिपात करते हैं। हम जानते हैं कि पृथ्वी अपने अक्ष पर लगभग 23.45° झुकी हुई है। यह सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार पथ पर 365 दिन, 5 घण्टे, 48 मिनट व 45.51 सेकेण्ड में एक चक्कर पूरा करती है, जिसे उसकी परिक्रमण गति कहते हैं। पृथ्वी पर ऋतु परिवर्तन, इसकी कक्षा पर झुके होने के कारण तथा सूर्य के सापेक्ष इसकी स्थिति में परिवर्तन यानी वार्षिक गति के कारण होती है। वार्षिक गति के कारण ही पृथ्वी पर दिन–रात छोटा–बड़ा होता है। इसी झुकाव के कारण 6 महीने पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव सूर्य के सम्मुख झुका हुआ होता है और 6 महीने पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव।

धीरे-धीरे (निरयण सूर्य के मेष राशि से मिथुन राशि तक अर्थात् लगभग 13 अप्रैल से 15 जुलाई तक) पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव का झुकाव सूर्य की तरफ होने लगता है (अर्थात् सूर्य की दूरी धीरे-धीरे घटने लगती है)। इस दौरान यहाँ गर्मी बढ़ने लगती है और धीरे धीरे गर्मी प्रचंड होने लगती है। पश्चात् (कर्क राशि से कन्या राशि अर्थात् लगभग 16 जुलाई से 16 अक्टूबर तक) पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव वापस लौटता हुआ सूर्य से दूर जाने लगता है और हमारे यहाँ गर्मी की प्रचंडता कम होते हुए ख़त्म होने लगती है। पुनः सूर्य जब तुला राशि से धनु राशि (लगभग 17 अक्टूबर से 13 जनवरी) तक की यात्रा तय करता है तो पृथ्वी का दक्षिणी ध्रुव सूर्य के सम्मुख होने लगता है। इस दौरान उत्तरी ध्रुव के सूर्य से दूर होने के कारण हमारे यहाँ ठंड पडनी शुरू होती है और जैसे-जैसे उत्तरी ध्रुव दूर जाता है ठंड बढ़ती जाती है। फिर जब सूर्य मकर, कुम्भ और मीन राशियों में (लगभग 14 जनवरी से 12 अप्रैल) रहता है तो धीरे धीरे ठंड कम होने लगती है।

यह अनुभूत है कि मकर संक्रांति के बाद ठंड कम होने लग जाती है। मकर संक्रांति से ही दक्षिणी ध्रुव सूर्य से दूर खिसकने लगता है और उत्तरी ध्रुव सूर्य की ओर बढ़ने लगता है। उत्तरी ध्रुव का यह खिसकाव सूर्य के मिथुन राशि पर्यन्त चलता है। धनु राशि में रहने के दौरान सूर्य हमारे देशांतर रेखा से सबसे ज्यादा दूरी पर स्थित रहता है; इसलिए इस दौरान ठंड अपने चरम पर होती है। इसलिए इस मास को पर्वोत्सवादि के लिए त्याज्य माना जाता है, इसे धन्वर्क दोष या खरमास कहते हैं। पुनः मीन राशि के दौरान पतझड़ होने लगते हैं और प्रकृति नीरस हो जाती है। इन सब कारणों से इस माह को वर्जित माना जाता है इसे मीनार्क दोष या खरमास कहा जाता है। ये तो है खरमास का सैद्धांतिक पक्ष।

उपर्युक्त व्याख्या 1. और 2. पूरी तरह से समञ्जित इसलिए नहीं हो पाती; क्योंकि निष्काम भाव से ईश्वराराधन और तत्सम्बन्धी व्रतपर्वोत्सव का फल खरमास में अक्षय बताया गया है। ध्यातव्य यह है कि ज्योतिष की दृष्टि में सूर्य और बृहस्पति आपस में मित्र हैं। फिर, यह कैसा कि सूर्य और बृहस्पति के एक साथ होने पर मांगलिक कर्म वर्जित किया जाये। वस्तुतः प्रत्येक जीव की अन्तिम अभिलाषा है ब्रह्म की प्राप्ति। सारे व्रतोपवासादि तथा धर्मकर्म की परिणति ईश्वर प्राप्ति के लिए ही तो है।

बृहस्पति एवं सूर्य की युति का रहस्य

अब बृहस्पति की राशि में सूर्य का प्रवेश अथवा सूर्य की राशि में बृहस्पति का प्रवेश का रहस्य देखें। वेद वाक्य है- **"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"** (ऋग्वेद 1.115.1, यजुर्वेद 7.42 और अथर्ववेद 13.2.35), अर्थात् समस्त चराचर जगत् की **आत्मा सूर्य** ही है। बृहस्पति की किरणें अध्यात्म नीति व अनुशासन की ओर प्रेरित करती हैं। शास्त्रों के अनुसार सूर्य आत्मा का कारक ग्रह है और गुरु परमात्मा का स्वरूप है। सूर्य के गुरु की राशि में आने पर अथवा गुरु के सूर्य की राशि में आने पर आत्मा से परमात्मा का मिलन होता है। ऐसी उत्कृष्ट दशा में यदि हम लौकिक (ईश्वराराधन आदि छोड़कर) कर्म करते हैं तो मूल विन्दु से हटकर हमलोग लौकिक कर्म में फँस जाते हैं और अन्तम परिणति की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। इसलिए कहा गया है कि खरमास के दौरान जितना संभव हो भगवान् की भक्ति और उपासना करनी चाहिए। इस अवधि में भगवान् में ध्यान केन्द्रित करना आसान होता है इसलिए भक्ति का फल शीघ्र प्राप्त होता है।

अतः खरमास गर्हित मास नहीं, वरन् वरेण्य मास है।

***

अग्रिम अंक रामानन्दाचार्य विशेषांक के लिए प्रस्ताव

रामा भगति रामानन्द जाने। पूरन परमानन्द बखाने।

आदि-ग्रन्थ में संकलित सेन नाई के पद में आचार्य रामानन्द को रामभक्ति परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। 14वीं शती के रामानन्दाचार्य ने सम्पूर्ण भारत में द्विभुज राम की उपासना का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया, जो बाद में चलकर एक सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गया। रामानन्दाचार्य के प्रधान 12 शिष्यों- कबीर, रविदास, सेना नाई,, आदि ने एख पूरी परम्परा बनायी, जिसके द्वारा समाज में जातिगत भेद-भाव से उठकर भक्ति की प्रधानता के आधार पर एकरस समाज के निर्माण को बल मिला। रामानन्दाचार्य के शिष्यों ने अनेक स्थानों पर अपने अपने मठों का निर्माण किया तथा वहाँ से समाज को एकसूत्र में बाँधने का काम किया। ऐसे रामानन्दाचार्य एवं उनकी परम्परा पर आज अनेक बिन्दुओं पर शोध आवश्यक प्रतीत हो रहे हैं, जिनमें से कुछ यहाँप्रस्तावित हैं-

- बिहार में भी वर्तमान में ऐसे अनेक रामानन्दी मठ हैं, जिनकी परम्परा पर कोई काम नहीं हुआ है। किसी एक मठ की भी परम्परा पर आलेख लिखे जाते हैं तो अग्रतर शोध के लिए वे मार्गदर्शक बनेंगे।
- रामानन्दाचार्य के नाम पर आज अनके ग्रन्थों के आनन्द-भाष्य मिलते हैं। गीता, ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषद्-ग्रन्थों पर आनन्द-भाष्यों का प्रकाशन हुआ है, जो archive.org वेबसाइट पर पूर्णरूप से उपलब्ध हैं। इनमें सामाजिक समरसता के जा सूत्र हैं, उनपर आलेख प्रस्तावित हैं।
- पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने रामानन्दाचार्य की हिन्दी रचनाओं का संकलन-सम्पादन पाण्डुलिपि से किया है जो "रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ" के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी से प्रकाशित हैं। इसमें रामानन्द के प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्त पर भी आलेख आमन्त्रित हैं।
- रामानन्दाचार्य की रचना वैष्णवमताब्ज-भास्कर प्रामाणिक मानी जाती है। इसमें प्रतिपादित सिद्धान्त हमें भारद्वाज संहिता के अन्तर्गत नारद-संहिता, सात्वत संहिता आदि अनेक प्राचीन संहिता-ग्रन्थों में भी मिलते हैं। उन संहिताओं का विवेचन भी अपेक्षित है, ताकि हम रामानन्दाचार्य के उदारवादी सिद्धान्तों का उत्स जान सकें।
- हम मौलिक शोध-आलेखों की अपेक्षा करते हैं, जिन विषयों पर अभी तक कार्य नहीं हुए हैं, वे सबसे महत्त्वपूर्ण हैं।

***

सनातन परम्परा के व्रत एवं पूजा-विधान किसी न किसी रूप में मानव जीवन, कृषि एवं स्वास्थ्य से जुड़े हुए हैं। वे हमारे जीवन को केवल अलौकिक प्रभावों से नहीं, अपितु लौकिक प्रभावों से भी स्वस्थ एवं सुखमय रखते हैं। मानसिक तथा शारीरिक रूप में हमें स्वस्थ रखते हैं। कतिपय कारणों से हम अपने प्राचीन पर्वों को एक ओर भूलते जा रहे हैं और दूसरी ओर अन्य भौलोकिक क्षेत्र के पर्वों को अपनाते जा रहे हैं। पौष मास में भी सनातन धर्म के अनेक पर्व हैं, जो आज भुला दिये गये हैं, लेकिन उनकी चर्चा हमें प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्तों में मिलते हैं, जो सिद्ध करते हैं वे व्रत-त्योहार पूर्वकाल में मनाये जाते थे।

पौष में सौभाग्य के लिए

'तिलदाही' व्रत का विधान

तिल मिले गोबर के कण्डे से हवन करने के कारण इस पूजा तथा व्रत को तिलदाही कहा गया है। पौष मास की यह एक वार्षिक पूजा है, जो वर्ष में एक दिन की जाती है। इसका उल्लेख हेमाद्रि ने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' नामक अपने ग्रन्थ के व्रतखण्ड में किया है। इसमें मुख्य रूप से भगवान् लक्ष्मी एवं विष्णु की पूजा एक साथ होती है। इस पूजा के करने से शारीरिक सौन्दर्य एवं अखण्ड सौभाग्य की बात कही गयी है। साथ ही, इसकी फलश्रुति में नपुंसकता को दूर करने की भी बात की गयी है कि इससे पौरुष की प्राप्ति होती है। इस पूजा की विशेषता है कि यह विशेष रूप से महिलाओं के द्वारा की जाती है। पूजा की विधि में बहुत जटिलता नहीं है। इस दिन से पहले पुष्य नक्षत्र में गाय के गोबर में तिल मिलाकर उसकी गोली बनाने का उल्लेख हुआ है। विवरण के अनुसार उसे सुखार रख लेना चाहिए, क्योंकि उसी गोली से हवन करने की विधि कही हगयी है। सम्भव है कि तिल मिले गोबर के कंडे से हवन के बाद निकलने वाली धुँआ स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद रहा हो। यह एक गवेषणीय विषय है।

हेमाद्रि ने इसे स्कन्दपुराण से उद्धृत माना है, किन्तु वर्तमान में उपलब्ध स्कन्दपुराण की प्रति में यह अंश नहीं है। चूँकि हेमाद्रि 13वीं शती के प्रसिद्ध है तथा उन्होंने उसका उल्लेख किया है, अतः यह प्रामाणिक तथा प्राचीन पूजा है। इस उल्लेख से यह भी सिद्ध होता है कि 13वीं शती में यह पूजा कम से कम पश्चिमी भारत में विख्यात थी।

हेमाद्रि के द्वारा उद्धृत सम्पूर्ण अंश यहाँ हिन्दी अनुवाद के साथ दिया जा रहा है। इसे पढने से ही पूजा की सारी विधि तथा फलश्रुति स्पष्ट हो जाती है।

स्कन्द उवाच।
विष्णुं वैकुण्ठमासीनदेवदेवं जनार्द्दनम्।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।।

स्कन्द ने कहा- जब भगवान् विष्णु अपने वैकुण्ठ लोक में निवास कर रहे थे तब भक्तों में श्रेष्ठ दैत्यराज प्रह्लाद ने प्रणाम कर उनसे पूछा।

वासुदेव जगन्नाथ भक्तानामभयप्रद।
अहं हि मनुजैः पृष्टो लोकानां च शुभाभम्।।

हे वासुदेव, हे जगन्नाथ, भक्तों को अभय प्रदान करनेवाले, हे प्रभो, मुझे मनुष्यों ने लोगों के शुभ एवं अशुभ के सम्बन्ध में पूछा है।

सुभगाः मनुजाश्चैव केचिद्देवेश दुर्भगाः।
भवन्ति कर्म्मणा केन सुरूपा रूपवर्जिताः।।

तैस्तु सर्वैरहं पृष्टो न जानामि जनार्द्दन।

हे देवों के स्वामी, मनुष्यों में कुछ सुन्दर भाग्यवाले हैं, तो कुछ दुर्भाग्य वाले, कुछ सुन्दर रूप वाले हैं, तो कुछ कुरूप हैं, ये सब किन कर्मों के कारण होते हैं? हे जनार्दन, उन्होंने मुझसे पूछा, लेकिन मैं नहीं जानता हूँ।

प्रणम्य शिरसा भक्त्या प्रह्लादो दैत्यसत्तमः।
वासुदेव जगन्नाथ भक्तानामभयप्रद।।
आपृष्टवान् जनान् सर्वान् आगतोऽस्मि तवान्तिकम्।
एवं सर्वं ततो मह्यं जनानां मम चैव हि।

इस प्रकार प्रणाम कर दैत्यराज प्रह्लाद ने भक्ति के साथ सर झुकाकर पूछा- हे भक्तों को अभय प्रदान करनेवाले, वासुदेव, जगत् के स्वामी सभी लोगों ने मुझसे पूछा तो आपके पास मैं आया हूँ। आप मुझसे यह सबकुछ कहें जिससे मेरे तथा मेरे लोगों का उपकार हो।

श्रीभगवानुवाच।

पुरा कृतयुगे तात न तेजोऽभूत् हुताशने।
ब्राह्मणस्य च शापेन तनुस्तस्य विरूपिता।।
ततो देवगणाः सर्वे ऋषिभिः किन्नरैः सह।
तेन दुःखेन सन्तप्ता ब्रह्माणं शरणं ययुः।

भगवान् बोले- हे प्रह्लाद, प्राचीन काल में ब्राह्मणों के शाप के कारण अग्नि में तेज नहीं हुआ करती थी। अग्नि का रूप भी विकृत हो गया था। तब सभी देवता ऋषियों और किन्नरों के साथ अग्नि के दुःख से दुःखी होकर ब्रह्माजी की शरण में गये।

देवा उचुः।

देवदेव जगत्कर्ता लोकानां प्रपितामह।
हुतभुक् द्विजशापेन न च यज्ञेषु हूयते।।

देवता बोले- हे देव, जगत् के कर्ता, लोगों के प्रपितामह, द्विजों के शाप से अग्नि में यज्ञों में आहुति नहीं दी जाती है।

ब्रह्मोवाच।

आसीत्पुरा व्रतं गोप्यन्तिलदाहीति संज्ञकम्।
तेन व्रतेन देवेन्द्र प्रेरयध्वं हुताशनम्।।
व्रतस्यास्य प्रभावेण पावको होष्यतेऽध्वरैः।

ब्रह्मा ने कहा- प्राचीन काल में तिलदाही नामक एक रहस्यमय व्रत था। हे देवराज इन्द्र, उस व्रत से अग्नि को प्रेरित करें। इस व्रत के प्रभाव से यज्ञों में अग्नि को आहुति दी जायेगी।।

तथेति चोक्ता देवास्ते व्रतग्निमकारयन्।
तदा प्रभृतियज्ञेषु हूयते च यथा पुरा।।
लोकपालेषु वैशित्वं दत्तच्च ब्रह्मणा स्वयम्।
तिलदाही तथाप्येका प्रसिद्धा दिवि देवतैः।।
तथा त्वमपि दैत्येन्द्र गच्छ शीघ्रं जनान् प्रति।

हम ऐसा ही करेंगे- यह कहकर देवतागण इस अग्नि के व्रत को करने लगे। इसके बाद से अग्नि में आहुति दी जाने लगी। लोकपालों में अग्नि का सबसे प्रमुख स्थान स्वयं ब्रह्माजी ने दिया। फिर देवताओं ने तिलदाही नामक एक व्रत को प्रसिद्ध बनाया। हे दैत्यराज प्रह्लाद, तुम भी शीघ्र लोगों के पास जाकर इसका प्रचार करो।

महादेव उवाच।

विधिना केन कर्त्तव्यं तिलदाही व्रतोत्तमम्।।
कस्मिन्मासे तिथौ चैव विधिना केन तद्भवेत्।

इस पर महादेव ने पूछा- किस विधि से यह तिलदाही नामक उत्तम व्रत को करें। किस मास में किस तिथि में तथा किस विधि से इसे सम्पन्न करना चाहिए।

श्रीभगवानुवाच।

पौषमासेषु या कृष्णा तिथिरेकादशी शुभा।।
तामुपोष्य तदा स्नानं कृत्वा नारायणं जपेत्।

भगवान् बोले- पौष मास के कृष्णपक्ष की एकादशी तिथि शुभ तिथि है। इस दिन स्नान तथा व्रत कर नारायण का जप करना चाहिए।

पुष्यर्क्षेण तु संगृह्य गोमयेन तु पिण्डकान्।।
कारयेत्तिलसंयुतान् ध्यायेद्देवं जनार्द्दनम्।
होमं कुर्याद्यथा शक्त्या मन्त्रैश्चागमसम्भवैः।।

पुष्य नक्षत्र में गोबर से पिण्ड बनाकर उसमें तिल मिलावें और भगवान् जनार्द्दन का ध्यान करें। इस प्रकार के गोबर के पिण्ड को सुखाकर उससे आगम में कहे गये मन्त्रों से हवन करें।

मण्डलं कारयेद् विष्णोः कुम्भान् स्थाप्य चतुर्दिशम्।।
सप्तधान्यमुदीच्याञ्च वस्त्राणि च फलानि च।

विष्णु का मण्डल अर्थात् अष्टदल कमल बनाकर उसके

चारों ओर कलश स्थापित कर उत्तर दिशा में सप्तधान्य, वस्त्र तथा फल रखें।

तिलप्रस्थोपरि देवं सश्रियं स्वर्णसम्भवम्।
नारायणं न्यसेत् पादौ जानुभ्यां विश्वरूपिणम्।
ऊर्वोस्त्रिविक्रमश्चैव मेढ्रे त्रैलोक्यरूपकम्।।
कट्याञ्च श्रीधरं देवं पद्माख्यं नाभिमण्डले।
उदरे नरसिंहं च वैकुण्ठं कण्ठमण्डले।।
सर्वसाधारणं बाह्वोर्मुखे विज्ञानविग्रहम्।
नेत्रे संसारदीपञ्च सर्वात्मानं शिरस्तथा।।

एक पसेरी तिल के ऊपर लक्ष्मी के साथ नारायण की सोने प्रतिमा रखें तथा उनका न्यास इस प्रकार करें। दोनों जंघाओं पर विश्वरूप में न्यास करें। दोनों घुटनों पर त्रिविक्रम के रूप तथा मेढ्र में त्रैलोक्यरूप में न्यास करें। कमर पर श्रीधर देव के रूप में तथा नाबि पर पद्म के रूप मे, उदर में नरसिंह के रूप में, कण्ठ में वैकुण्ठ के रूप में दोनों बाहों पर सर्वसाधारण के रूप में तथा मुख पर विज्ञानविग्रह के रूप में, आँखों पर संसारदीप के रूप में तथा शिर पर सर्वात्मान के रूप में न्यास करें।

एवं न्यासविधि कृत्वा मन्त्रमूर्तिं प्रकल्पयेत्।
कृत्वा पूजां यथायोगं ततो ह्यर्घ्यं प्रपूजयेत्।।
फलरत्नसमायुक्तं पुष्पधूपादिधूपितम्।
मन्त्रणानेन दैत्येन्द्र ततोऽहन्तोषमावहम्।।

इस प्रकार न्यासविधि सम्पन्न कर मन्त्ररूपी मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए। उनकी पूजा यथा उपलब्ध सामग्री से करें तथा धूप जलाकर, फल, रत्न, पुष्प आदि से निम्नलिखित मन्त्र से अर्घ्य दें।

कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वं सर्वाघौघविनाशन।
देहि मे रूपसौभाग्यं स्वर्ग मोक्षं च देहि मे।।

हे कृष्ण, हे कृष्ण आप कृपालु हैं। आप सभी पापों के समूह का नाश करनेवाले हैं। मुझे रूप और सौभाग्य प्रदान करें तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करें।

तिलदाहीति ये केचित् व्रतं कुर्वन्ति मानवाः।
वरदोऽहं सदा तेषां ददामि विपुला श्रियम्।।

इस प्रकार तिलदाही नामक व्रत यो कोई भी मनुष्य करता है उन्हें में वर प्रदान करता हूँ तथा पर्याप्त धन-सम्पत्ति देता हूँ।

एवं संश्रुत्य दैत्येन्द्रो नमस्कृत्य जनार्द्दनम्।
आगतो यत्र सम्मर्द्दे जनानां संस्थितो भुवि।।

इस प्रकार सुनकर दैत्यराज प्रह्लाद भगवान् विष्णु को प्रणाम कर बहाँ पहुँचे जहाँ पृथ्वी पर लोग जमा होकर व्याकुल हो रहे थे।

लोकाः ऊचुः।
ब्रूहि दैत्येन्द्र यद्दत्तं कथितं चक्रपाणिना।
त्वया पृष्टेन लोकानां हितायाग्रे तथात्विह।।

लोगों ने कहा- हे दैत्यराज प्रह्लाद आपने जब पूछा तो लोगों के हित के लिए भगवान् ने जो कुछ कहा वह यहाँ हमें बतावें।

प्रह्लाद उवाच।
अहो जना युष्मदर्थं गतोऽहं यत्र केशवः।
मम दुःखतरं घोरं मर्द्दितं चक्रपाणिना।।
यथोपदिष्टं देवेन निश्चयं कथयाम्यहम्।
सविस्तरं ततो लोके व्याख्यानं दानवेन वै।

प्रह्लाद बोले- हे मनुष्यगण आपलोगों के लिए में वहाँ गया था, जहाँ भगवान् विष्णु हैं। मेरे घोर दुःख का विनाश चक्रधारि विष्णु ने कर दिया है। भगवान् विष्णु ने जो कुछ कहा है उसे मैं निश्चय आपलोगों से कह रहा हूँ। इसके बाद दैत्यराज प्रह्लाद ने विस्तार से पूरा कह सुनाया।

व्रतस्यास्य प्रभावेण पुरुषत्वं प्रजायते।
अजरा जायते तत्र न च दुःखं प्रपश्यति।।

इस व्रत के प्रभाव से नरपुंसकता दूर होती है, बुढ़ापा नहीं आती है और वह मनुष्य दुःखी नहीं होता है।

मनोरथाः सुसम्पूर्णाः पुत्रपौत्रसमन्विताः।
अवैधव्यं सदा स्त्रीषु सतीत्वं जायते जने।
भर्त्रा सह तत्रैकत्वं सुनिर्व्वाणं समृच्छति।।

उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा पुत्र पौत्र आदि से सम्पन्न दो जाते हैं। स्त्रियाँ विधवा नहीं होतीं है तथा सतीत्व रहता है। अर्थात् पति की नपुंसकता के कारण विवाहेतर सम्बन्ध नहीं होते। वह अपने पति के साथ मोक्ष प्राप्त करतीं हैं।

पूर्वं तावत् कृतं शच्या इन्द्रपत्न्या सुशीलया।
अनुसूयारुन्धतीभ्यां सीतया च कृतं तथा।।

द्रौपद्यैतद्व्रतं सर्वं यावज्जीवमनुष्ठितम्।
सुखमारोग्यमैश्वर्यं रूपसौभाग्यबुद्धिदम्।

इस व्रत को सुन्दर शीलवाली इन्द्रपत्नी शची ने भी किया था, अरुन्धती और अनसूया ने किया था, सीताजी ने भी किया था, द्रौपदी तो जीवनपर्यन्त यह व्रत करती रहीं।

सन्ध्यया संस्तुतं सर्व्वं पाञ्चाल्या यदनुष्ठितम्।
तत्सर्वं साथ पप्रच्छ विष्णुपत्नी यशस्विनी।
तिलदाहीव्रतं भद्रे ब्रूहि त्वं सखि सुव्रते।
विधिमुद्यापनं चैव कथयस्व यथायथम्।

महान् यश वाली विष्णुपत्नी सन्ध्या ने द्रौपदी के द्वारा की जानेवाली इस पूजा के सम्बन्ध में द्रौपदी से पूछा- हे भद्रे तिलदाही नामक इस व्रत के विषय में कहें। इसकी उद्यापन की विधि जो जैसा है, वह भी बतलावें।

द्रौपदी कथयामास व्रतस्यास्य विधिक्रमम्।।
पौषे मासे तु या कृष्णा तिथिरेकादशी तथा।
तामुपोष्य ततः स्नानं विधिपूर्वं समाचरेत्।।

इस पर द्रौपदी ने इस व्रत के विधान का क्रम बतलाया कि पौष मास में जो कृष्ण पक्षकी एकादशी तिथि होती है उस दिन विधान के साथ स्नान कर व्रत करें।

मौनं संकल्प्य संचित्य पुराणपुरुषोत्तमम्।
ततः पूजा विधातव्या मन्त्रैः स्वागमसम्भवैः।
अर्घ्यं दत्त्वा विधानेन स्तुतिं कुर्यात् पुनः पुनः।

पुराणों में जिन्हें पुरुषोत्तम विष्णु कहा गया है उनका संकल्प कर मन ही मन संकल्प करें और आगम के मन्त्रों से पूजा करें। विधानपूर्वक अर्घ्य देकर बार बार स्तुति करें।

उद्यापनविधिं वच्मि ऋणुष्वैकमनाः सति।।
तिलप्रस्थोपरि देवं सश्रियं स्वर्णसम्भवम्।

द्रौपदी ने आगे कहा- अब मैं उद्यापन की विधि कहती हूँ। हे सती सन्ध्या एकाग्र होकर सुनें। स्वर्ण से बने लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा को तिल की ढेर पर स्थापित करें।

पूजयेमण्डलं पश्चाद्वस्त्रैराभरणैः फलैः।
कुम्भाः सवस्त्राः कर्तव्याश्चत्वारो मण्डपाद्बहिः।
सप्तधान्यमुदीच्यान्तु प्राच्यां होमं तु कारयेत्।

इसके बाद मण्डल (अष्टकोण मण्डल) की पूजा वस्त्र और आभूषणों से करें। मण्डप से बाहर वस्त्र से ढँककर चार कलश स्थापित करें।

उत्तर दिशा में सप्तधान्य रखें तथा पूर्व दिशा में होम करें।

आचार्यं सकलत्रञ्च वार्चयेत् कुसुमादिभिः।
वस्त्रैराभरणैः पुष्पैः फलैर्नानाविधोत्तमैः।

पत्नी के साथ आचार्य की पूजा अनेक प्रकार के उत्तम फल-फूल, वस्त्र आभूषण आदि से करें।

एवं यः कुरुते भद्रे नारी वा पुरुषोऽपि वा।
वर्षे वर्ष तु सुश्रोणि गाञ्च दद्यात् सदक्षिणाम्।

हे भद्रे सन्ध्या, इस प्रकार जो नारी अथवा पुरुष प्रत्येक वर्ष पूजा करते हैं और दक्षिणा के साथ गाय दान करते हैं।

तिलदाहीव्रतं सम्यक् ये प्रकुर्वन्ति मानवाः।
तेषां सौभाग्यमतुलं सुन्दराङ्गः प्रजायते।

तिलदाही नामका यह व्रत जो मनुष्य भलीभाँति करते हैं उनका भाग्य उत्तम हो जाता है तथा उनका शरीर भी सुन्दर होता है।

एतद्व्रतं सविस्तारमुद्यापनसमन्वितम्।
यः करोति सदा भक्त्या स वैष्णवपुरं व्रजेत् ॥

विस्तार के साथ जो यह व्रत भक्तिभाव से करते हैं तथा उद्यापन भी करते हैं वे वैष्णव धाम को प्राप्त करते हैं।

एवं यः कुरुते भद्रे नारी वा पुरुषोऽपि वा।
सर्वकामसमृद्धं तु परं पदमवाप्नुयात्।।

इस प्रकार हे भद्रे सन्ध्य, नारी अथवा पुरुष इस व्रत को करते हैं वे सारी कामनाओं से परिपूर्ण हो जाते हैं और परम पद पाते हैं।

इति स्कन्दपुराणोक्तं तिलदाहीव्रतम्।

स्कन्दपुराण में उक्त तिलदाही व्रत सम्पूर्ण हुआ।

(-सम्पादक, पं. भवनाथ झा द्वारा संकलित एवं अनूदित)

पौष मास की विशेष पूजा- कूर्मद्वादशी

भगवान् विष्णु के दशावतारों में दूसरा कूर्म का है। इसी अवतार में समुद्र-मन्थन हुआ था, जिसमें भगवान् ने कूर्म के रूप में मन्दराचल को आधार प्रदान किया था। पौष मास में इसी कूर्म के रूप में भगवान् विष्णु की पूजा द्वादशी तिथि को की जाती है। आज यह कूर्म-द्वादशी अप्रचलित हो चुकी है, किन्तु इसका उल्लेख हमें 12वीं शती के ग्रन्थ 'कृत्यकल्पतरु' में मिलता है। पाटकों की जानकारी तथा आस्था होने पर इस व्रत को करने के लिए इसका पूरा विवरण यहाँ दिया जा रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि पौष मास भघवान् की उपासना के लिए महत्त्वपूर्ण है।

सनातन धर्म में पौषमास अन्य मासों की तरह ही उपासना और अर्चना के लिए प्रतिष्ठित है। इस मास कृष्णपक्ष की एकादशी तिथि को तिलदाही पूजन एवं व्रत का विधान 13वीं शती के ग्रन्थ में मिलता है, जिसका विवेचन हम पूर्व आलेख में कर चुके हैं। यहाँ शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को कूर्मद्वादशी की पूजा का उल्लेख किया रहा है। इस पूजन का उल्लेख 12वीं शती में लक्ष्मीधर ने अपने ग्रन्थ 'कृत्यकल्पतरु' में किया है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि हेमाद्रि गुजरात के थे और उनके 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में उल्लिखित व्रत पश्चिम भारत में प्रसिद्ध रहे हैं। किन्तु लक्ष्मीधर कन्नौज के गहड़वाल राजा विजयचन्द्र के दरबार में थे और उन्होंने जिन व्रतों का उल्लेख किया है वे वर्तमान उत्तरप्रदेश, सम्पूर्ण बिहार, नेपाल सहित पूर्वोत्तर भारत में प्रसिद्ध रहे हैं। लक्ष्मीधर का 'कृत्यकल्पतरु' सम्पूर्ण पूर्वोत्तर भारत के लिए आधार ग्रन्थ माना

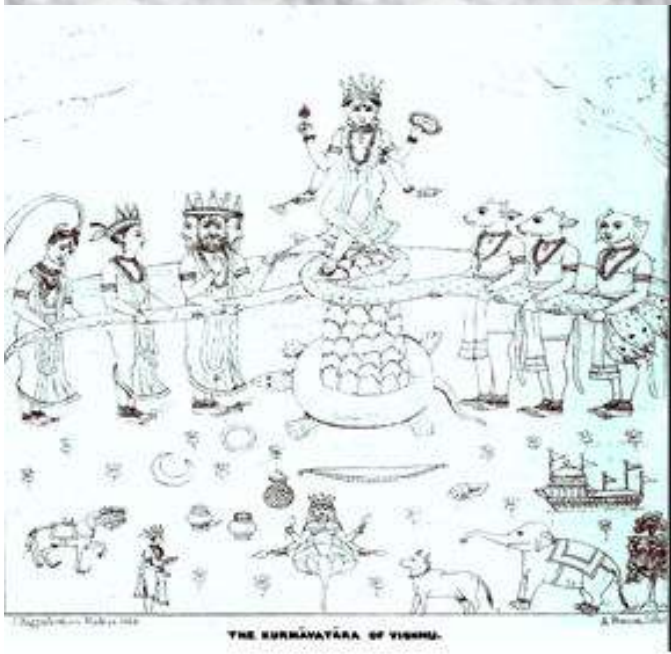

द हिन्दू पैंथन, एडबर्ड मूर, (चित्र सहित नवीन संस्करण) डब्ल्यू.पी. सिम्पसन, 1864 ई. में प्रकाशित।

जाता है। इससे हम मान सकते हैं यह कूर्म द्वादशी व्रत इन क्षेत्रों में प्रचलन में था। पौष मास की यह कूर्मद्वादशी पूजा शुक्लपक्ष की द्वादसी तिथि को की जाती है। इस तिथि के भी देवता भगवान् विष्णु हैं।

वर्तमान उपलब्ध वराह पुराण में यह अंश मिलता है। यहाँ पाठकों की सुविधा के लिए हिन्दी अनुवाद के साथ इस व्रत का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

[अथ कूर्मद्वादशीव्रतम्]

दुर्वासा उवाच

पौषमासस्य या पुण्या द्वादशी शुक्लपक्षतः।
तस्यां प्रागिव सङ्कल्प्य कुर्यात् स्नानादिकाः क्रियाः॥

पौष मास के शुक्लपक्ष की जो द्वादशी तिथि होती है उसमें अन्य द्वादशी तिथि की तरह संकल्प कर स्नान आदि करें।

निर्वर्त्य बोधयेद्रात्रावेकादश्यां जनार्दनम्।
पृथङ्मन्त्रैर्द्विजश्रेष्ठ देवदेवं जनार्दनम्॥

एक दिन पूर्व एकादशी को व्रत रखकर रात्रि में अलग -अलग मन्त्रों से भगवान् विष्णु को सम्बधित करना चाहिए।

कूर्माय पादौ प्रथमं तु पूज्यं
नारायणायेति कटिं हरेस्तु।
सकर्षणायेत्युदरं हरेस्तु
उरो विशोकाय भवाय कण्ठम्॥

सबसे पहले 'कूर्माय नमः' इस मन्त्र से दोनों पैरों की पूजा करें। 'नारायणाय नमः' इस मन्त्र से कमर की पूजा करें। 'सङ्कर्षणाय नमः' इस मन्त्र से भगवान् के पेट की पूजा करें। 'विशोकाय नमः' इस मन्त्र से छाती की पूजा करें और 'भवाय नमः' मन्त्र से कण्ठ की पूजा करें।

सुबाहवे चैव भुजौ शिरश्च
नमो विशालाय रथाङ्गशङ्खौ।
स्वनाममन्त्रेण सुधूपगन्धैः
नानानिवेद्यैर्विविधैः फलैश्च॥

'सुबाहवे नमः' इससे दोनों बाहों तथा मस्तक की पूजा तथा 'विशालाय नमः' इस मन्त्र से चक्र एवं शंख की पूजा करें। अपने नाम मन्त्रों से सुन्दर धूप, चन्दन, अनेक प्रकार के नैवेद्य तथा फल अर्पित करें।

अभ्यर्च्य देवं कलशं तदग्रे
संस्थाप्य माल्यासुरदामकण्ठम्।
तं रत्नगर्भं तु पुरेव कृत्वा
स्वशक्तितो हेममयं तु देवम्॥

भगवान् विष्णु की इस प्रकार पूजा कर उनके समक्ष कलश की स्थापना कर उसके कण्ठ में माला पहनानी चाहिए। पूर्वोक्त विधि से उस कलश के भीतर रत्न रखना चाहिए और यदि सामर्थ्य हो तो देवता की मूर्ति सोने बनवानी चाहिए। (विशेष- यहाँ माल्यासुरदामकण्ठम् का अर्थ स्पष्ट नहीं है। यही अंश हेमाद्रि के 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में भी है, जिसमें "माल्यास्तृतदामकण्ठम्" पाठ है तथा वराहपुराण में जो यह अंश उपलब्ध है, उसमें "मालासितवस्त्रयुक्तम्" पाठ है। वराहपुराण के अनुसार माला तथा श्वेत वस्त्र का विधान किया गया है।)

समन्दरं कूर्मरूपेण कृत्वा
संस्थापयेत्ताम्रपात्रे घृतस्य।
पूर्णे घटोपर्यथ संनिवेश्य
श्वो ब्राह्मणायैवमेवं तु दद्यात्॥

इस घट को मन्दराचल सहित कूर्म के रूप में स्थापित कर इसके ऊपर घी से भरा हुआ ताम्बे का कटोरा रखें और उसे अगले दिन ब्राह्मण को दान कर दें।

यो ब्राह्मणान् भोज्य सदक्षिणांश्च
यथाशक्त्या प्रीणयेद्देवदेवम्।
नारायणं कूर्मरूपेण पश्चात्
स्वयं च भुञ्जीत सभृत्यवर्गः॥
एवं कृते चेत्त्रिविधं हि पापं
विनश्यते नात्र विचारणास्ति।
संसारचक्रं प्रविहाय शुद्धं
प्राप्नोति लोकं तु हरेः पुराणम्॥

जो दक्षिणा के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराकर शक्ति के अनुसार कूर्मरूप नारायण को प्रसन्न करते हैं बाद में स्वयं भी नौकरों के साथ भोजन करते हैं। उनके तीनों प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं, यहाँ चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वे इस संसार के चक्र को छोड़कर श्रीहरि के प्राचीन लोक को पाते हैं।

अनेकजन्मान्तरसञ्चितानि
नश्यन्ति पापानि नरस्य भक्त्या।
प्रागुक्तरूपं तु फलं लभन्ते
नारायणस्तुष्टिमुपैति सद्यः॥

मनुष्य के अनेक जन्मों से चले आ रहे पाप पूर्वोक्त फल पाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं और तुरत नारायण प्रसन्न हो जाते हैं।

इति कूर्मद्वादशीव्रतम्॥

यह कूर्मद्वादशी का विधान है।

(-सम्पादक, पं. भवनाथ झा द्वारा संकलित एवं अनूदित)

***

अग्रिम अंक से

सन्त लालच दास कृत

'हरिचरित्र' महाकाव्य के अप्रकाशित अंश का क्रमशः प्रकाशन

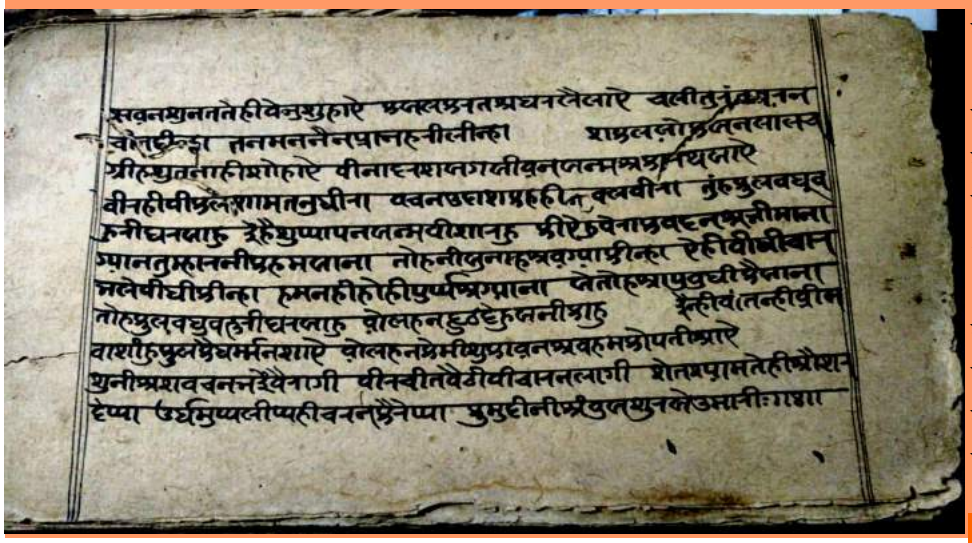

सन्त लालच दास 17वीं शती में बरेली के सन्त कवि थे। उन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर अवधी में 'हरिचरित्र' नामक रचना 96 अध्यायों में की। फिर भी वह रचना अधूरी रह गयी तो उनके शिष्य ने

शेष पृष्ठ 50 पर देखें

कुमुद सिंह

पौष मास का एक लोक-विधान

'पुसैठ'

पौष मास में अनेक प्रकार के लोक-विधान हमें मिलते हैं। इन्ही में से पुसैठ या पुसौठ का आयोजन भी लोक-परम्परा में जीवित है। इसे हम पौष मास में किया जानेवाला कर्म 'पौषेष्टि कर्म' कह सकते हैं। यह त्वचा की रुक्षता को मिटाने का शायद प्रयास हो। साथ ही, बच्चे के शरीर को अन्न से गर्मी देने के लिए तथा त्वचा को निखारने के लिए सनातन धर्म की परम्परा में यह विधान आज भी जीवित है। एक विवरण देखें-

चावल से त्वचा संवारने की मैथिल परंपरा है पुसैठ

मिथिला में बच्चे के जन्म के उपरांत पहली सर्दी में त्वचा की देखभाल के लिए एक लोक विधान किया जाती है। स्थानीय भाषा में इस विधान को पुसैठ कहते है। यह विधान पौष माह के दौरान लगभग 15 दिसम्बर से 14 जनवरी के बीच आयोजित किया जाता है। यह बच्चे के जन्म के एक साल के अंदर ही किया जाता है। पुसैठ का विधान मंगल और शनिवार को छोड़कर पौष माह की किसी भी तिथि को किया जा सकता है। मान्यता है कि पौष माह में बगिया से त्वचा को सेकने पर बच्चे की त्वचा हमेशा मुलायम रहती है।

क्या है विधान

पुसैठ का विधान खास तौर पर बच्चे की बुआ या मौसी निभाती हैं। इन दोनों के नहीं रहने पर बहन भी निभाती हैं। इस दौरान बच्चे और बुआ दोनों को नया वस्त्र पहनाया जाता है। उसके उपरान्त बच्चे को गोद में लेकर बुआ पूरब दिशा की ओर मुख रख कर बैठती है। उसके दाहिनी ओर एक पात्र होता है। उस पात्र में गर्म पानी में विभिन्न आकार प्रकार का बगिया रहता है। नये चावल के आंटे से बने इन बगियों को दाहिने हाथ से एक-एक कर पानी से निकाल कर बच्चे के कोमल अंगों पर रखा जाता है। इस प्रकार बच्चे के कोमल अंगों को उसकी बुआ बगिये से सेंकती हैं। इस दौरान बच्चे के गाल, हाथ और पैर आदि को बारी-बारी से सेका जाता है। खास बात यह होती है कि जिस अंग को सेका जाता है, उसी अंग के आकार प्रकार का बगिया भी बनाया जाता है। अंगों के चयन का क्रम कोई निश्चित नहीं है, लेकिन परम्परागत रूप से देखा गया है कि सबसे पहले बच्चे की गाल सेंका जाती है। उसके बाद होंठ, नाभी और कान को सेंका जाता है। फिर हाथ की हथेली और पाँव के तलबे को सेका जाता है। अन्त में बच्चे के गुप्तांगों को सेंका जाता है।

इस पूरे विधान के दौरान उपस्थित महिलाएं सोहर और भगवती गीत गाती है। वैसे इस मौके पर सोहर गाया जाता है।

यशोमति अंगना आनंदित और उछाह भेल रे ललना
गोकुल जनमल कन्हैया चलहु सखि पूजन हे..

तथा

बबुआ ढुनमुन खेले अंगना
सुहावन लागे ना
बौआ बाबा के वंश बढौना ऐलै ना
रानी दादी के गोद खेलौना ऐलै ना...

सोहर गानेवाली महिलाओं को गुड़ डाला कर बनाया हुआ बगिया विशेष तौर पर उपहार स्वरूप दिया जाता है, जो खाने में बेहद स्वादिष्ट होता है

बगिया बनाने का तरीका

पका हुआ बगिया

पुसैठ के लिए बगिया बनाने का का तरीका बेहद रोचक है। हम सब जानते हैं कि अगहन में खेतों से तैयार धान हमारे खलिहान से होकर हमारे आँगन तक आता है। सबसे पहले उस धान को कूट कर चावल निकाला जाता है। फिर उस अरबा चावल को पीसा जाता है। पीसे हुए चावल के आंटे को एक पात्र में रखा जाता है। पुसैठ के दिन रसोई को अच्छे से साफ करके सबसे पहले एक बर्तन में पानी उबाला जाता है। जब पानी उबलने लगता है तो उसमें मात्रा के अनुसार चावल का आंटा डाल कर मिलाया जाता है। स्थानीय भाषा मैथिली में इसे 'रान्ह करना' कहा जाता है। जब आँटा ठीक प्रकार से रान्ह हो जाता है, तो उसे गूंथ लिया जाता है। उसके बाद छोटे-छोटे आकार में विभिन्न अंगों की आकृति का बगिया बनाया जाता है। बगिये को तैयार करने के बाद एक बर्तन में पानी उबाला जाता है। जब पानी उबलने लगता है तो उसमें बगिये को डाल दिया जाता है। थोडी देर उबलने के बाद बगिया पानी में तैरने लगता है तो समझा जाता है कि अब यह पककर तैयार हो चुका है। तब इसे चूल्हे से उतर लिया जाता है।

खाने को बनता हैं गुड़ बगिया

पुसैठ के दौरान मौजूद लोगों के बीच भी खाने के लिए भी बगिये का ही वितरण किया जाता है। वितरित होनेवाले बगिये में स्वाद का ख्याल रखते हुए उसके अंदर गुड़ डाला जाता है। यह खाने में बेहद स्वादिष्ट होता है। वैसे खाने के लिए गुड़ बगिया के अलावा दूध बगिया, खोआ बगिया और दाल बगिया आदि प्रकार भी यहाँ काफी लोकप्रिय हैं।

***

पौष मास की एकादशी का माहात्म्य

CC-0 Uma Raman Jha Collection. Digitized by eGangotri

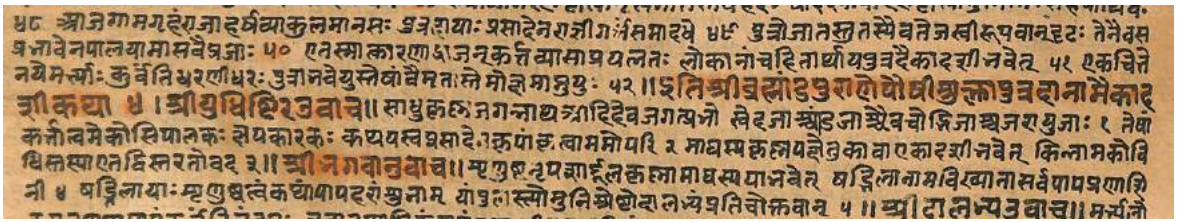

एकादशी-माहात्म्य की एक पुरानी पाण्डुलिपि में पुष्पिका का अंश*

पौष मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी को सफला एकादशी कहते हैं तथा शुक्लपक्ष की एकादशी को पुत्रदा कहते हैं। दोनों दिव व्रत करने के माहात्म्य पुराणों में वर्णित किये हैं। एकादशी माहात्म्य की अनेक पुस्तकें भारत भर की विभिन्न स्थानीय लिपियों में प्रकाशित है। इसकी अनेक पुरानी पाण्डुलिपियाँ भी मिलतीं हैं।

पुराणों में प्रत्येक मास की एकादशी तिथि के दिन भगवान् विष्णु को समर्पित व्रत एवं उनकी उपासना का विधान किया गया है। इनमें प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की एकादशी तिथियाँ तथा जिस वर्ष मलमास या अधिक मास होते हैं उस मास भी दोनों पक्षों की एकादशी तिथियों का माहात्म्य लिखे गये हैं। पाठकों की सुविधा के लिए एकादशी-माहात्म्य नाम से अनेक पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ है। वर्तमान में मेरे समक्ष एकादशी-माहात्म्य तथा उनसे सम्बद्ध निम्नलिखित प्रामाणिक ग्रन्थ हैं-

1. **एकादशीमाहात्म्य,** खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, मुंबई-4, संवत् 2076 (2018ई.)। यह वेंकटेश प्रकाशन से पूर्वप्रकाशित संस्करण का आधुनिक पुनर्मुद्रण है। इसके हिन्दी टीकाकार पं. केशव प्रसाद शर्मा द्विवेदी हैं।
2. **एकादशीमाहात्म्यम्,** हरिप्रिया हिन्दी व्याख्या के साथ, व्याख्याकार एवं सम्पादक- पं. श्री प्रेमदत्त शर्मा साहित्य शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, प्रकाशन वर्ष- 1958ई.
3. ***एकादशीमाहात्म्य,** प्राचीन पाण्डुलिपि, पं. उमारमण झा का संकलन, archive.org पर Ekadashi Mahatmya 1046 Uma Raman Jha Manuscript Collection के नाम से ई-गंगोत्री संस्था के द्वारा उपलब्ध।
4. **चतुर्विंशतिएकादशीपूजाविधि,** पाण्डुलिपि, रघुनाथ टेम्पल संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी में संरक्षित।

5. **एकादशी माहात्म्यु,** तेलगु लिपि में बबिल्ल रामास्वामी शास्त्री द्वारा प्रकाशित, 1938 ई.
6. **एकादशीतत्त्वम्,** रघुनन्दन- एकादशीव्रतों पर धर्मशास्त्रीय अध्ययन।

वर्तमान उपलब्ध पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में अध्याय संख्या 40 एवं 41 में भी एकादशी के माहात्म्य विस्तार से कहे गये हैं। यहाँ पौष कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम सफला दिया गया है। तथा इसके अगले अध्याय में पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य वर्णित है। उपर्युक्त प्रथम पुस्तक में जो कथा दी गयी है वह वस्तुतः पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में अध्याय संख्या 40 एवं 41 है। दूसरी पुस्तक में भी यहीं कथा दी गयी है लेकिन स्रोत वर्णित नहीं है।

एकादशी माहात्म्य की पाण्डुलिपि में भी कथा तो यहीं है किन्तु कृष्णपक्ष की एकादशी का माहात्म्य गरुड़ पुराण से तथा शुक्लपक्ष की एकादशी का माहात्म्य ब्रह्माण्डपुराण से उद्धृत माना गया है। इस भिन्नता से संकेत मिलता है कि वस्तुतः सफला एवं पुत्रदा एकादशी का माहात्म्य अतीत में अनेक स्थलों पर लिखे गये। एक ही कथा को विभिन्न लोगों ने विभिन्न पुराणों के साथ लिपिबद्ध किया। इससे इन दोनों एकादशी की कथा की प्रसिद्धि और बारबार व्यवहार होना सिद्ध होता है।

इस प्रकार पौष मास की महती गरिमा सिद्ध होती है। सनातन धर्म में इसे अन्य मास की तरह ही श्रेष्ठ मास माना गया है। जिस प्रकार अन्य मासों में भी कुछ लौकिक कार्यों का निषेध होता है, उसी प्रकार पौष में भी विवाह, उपनयन, मुंडन एवं गृहारम्भ का निषेध है। ये निषेध इस मास को निन्दित नहीं बनाते हैं।

यहाँ हम पद्मपुराण से उद्धृत पौषमास की दोनों एकादशी की कथा का माहात्म्य प्रस्तुत कर रहे हैं-

पौषकृष्ण सफला एकादशी कथा

युधिष्ठिर उवाच

पौषस्य कृष्णपक्षे तु किं नामैकादशी भवेत्।
किं नाम को विधिस्तस्या एतद्विस्तरतो वद।
एतदाख्याहि भो स्वामिन्को देवस्तत्र पूज्यते।।1।।

युधिष्ठिर ने पूछा- हे भगवन् पौष मास के कृष्ण पक्ष की जो एकादशी तिथि होती है उसका क्या नाम है, क्या विधि है यह विस्तार से समझावें। हे देव, हे स्वामी, इसमें किस देवता की पूजा होती है।

श्रीकृष्ण उवाच-

कथयिष्यामि राजेन्द्र भवतः स्नेहबन्धनात्।
तुष्टिर्मे न तथा राजन्यज्ञैर्बहुलदक्षिणैः।।2।।
यथा मे तुष्टिरायाति ह्येकादशीव्रतेन वै।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो हरिवासरः।।3।।

श्रीकृष्ण ने कहा- हे राजन् आपके स्नेह के बन्धन के कारण मैं कहता हूँ। मुझे पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ से जिस प्रकार की तुष्टि नहीं मिलती है, उसी प्रकार की तुष्टि एकादशी व्रत से मिलती है। इसलिए प्रयत्नपूर्वक विष्णु के दिन का यह व्रत करना चाहिए।

सत्यमेतन्न वै मिथ्या धर्मिष्ठानां विशारद।
पौषस्य कृष्णपक्षे या सफला नाम नामतः।।4।।

हे धार्मिकों में श्रेष्ठ, यह मिथ्या नहीं, सत्य है। पौष मास के कृष्णपक्ष की जा एकादशी तिथि होती है वह सफला एकादशी के नाम से है।

तस्यां नारायणं देवं पूजयेच्च यथाविधि।
पूर्वेणैव विधानेन कर्त्तव्यैकादशी शुभा।।5।।

इसमें नारायण देव की पूजा विधान से करनी चाहिए। तथा पूर्वोक्त विधान से यह एकादशी व्रत करना चाहिए।

नागानां च यथा शेषो पक्षिणां पन्नगाशनः।
देवानां च यथा विष्णुर्द्विपदानां यथा द्विजः।।6।।
व्रतानां च यथा राजन् श्रेष्ठा चैकादशी तिथिः।
ते जनाश्चैव भो राजन् पूज्या वै सर्वदा मम।।7।।

जैसे नागों में शेषनाग हैं, पक्षियों में गरुड़ हैं, देवों में विष्णु हैं और द्विजों में ब्राह्मण है वैसे तिथियों में एकादशी है। वे लोग जो एकादशी करते हैं, वे मेरे भी पूज्य हैं।

हरिवासरसंलीनाः कुर्वन्त्येकादशीव्रतम्।
इहैव धनसंयुक्ता मृता मोक्षं लभन्ति ते।।8।।

जो भगवान् विष्णु के दिन एकादशी करते रहते हैं वे इस लोक में धनी होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

सफलायां फलै राजन् पूजयेन्नामतो हरिम्।
नारिकेलफलैश्चैव क्रमुकैर्बीजपूरकैः।।9।।
जम्बीरैर्दाडिमैश्चैव तथा धात्रीफलैः शुभैः।
लवङ्गैर्बदरीभिश्च तथाम्रैश्च विशेषतः।।10।।

सफला नामक एकादशी में विशेष रूप से फल लेकर पूजा करनी चाहिए। नारियल, सुपारी, बिजौरा, जंबीरी नींबू, अनार, आँवला, लौंग, बेर का फल तथा आम से विसेष रूप से पूजा करनी चाहिए।

पूजयेद्देवदेवेशं धूपदीपैस्तथैव च।
सफलायां विशेषेण दीपदानं तु कारयेत्।।11।।

सफला एकादशी में देवों के स्वामी की पूजा धूप दीप से करनी चाहिए तथा विशेष रूप से दीप अर्पित करना चाहिए।

रात्रौ जागरणं चैव कर्त्तव्यं सह वैष्णवैः।
यावन्निमेषो नेत्रस्य तावज्जागर्ति यो निशि।।12।।
एकाग्रमनसो राजन्तस्य पुण्यं शृणुष्व हि।
तत्समो नास्ति यज्ञो वै तीर्थं वा तत्समं नहि।।13।।
सर्वव्रतानि राजेन्द्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
एवं वर्षसहस्राणि तपसा नैव यत्फलम्।।14।।
तत्फलं समवाप्नोति यः करोति हि जागरम्।

रात में विष्णु भक्तों के साथ जागरण करना चाहिए। जब तक आँख की पलकें बंद नहीं होतीं हैं तब तक जो रात में एकाग्रचित्त होकर जागरण करते हैं, उसका फल सुनें। इस जागरण के समान पुण्यदायक न तो यज्ञ है न ही कोई तीर्थ। सभी व्रतों को पूर्ण सोलह कलाएँ नहीं होतीं हैं, किन्तु एकादशी के जागरण सोलहों कलाओं से पूर्ण है। इस प्रकार हजार वर्ष तक तपस्या का जो फल नहीं मिलता वह जागरण करनेवाले को मिलता है।

श्रूयतां राजशार्दूल सफलायाः कथा शुभा।।15।।
चंपावतीति विख्याता पुरी माहिष्मतस्य च।
बभूवुस्तस्य राजर्षेः पुत्राः पञ्च कुमारकाः।।16।।

हे राजसिंह, सफला एकादशी की शुभ कथा सुनें। माहिष्मत देश में चम्पावती नामक एक नगरी थी। वहाँ के राजर्षि के पाँच पुत्र हुए।

तेषां मध्ये तु ज्येष्ठो वै महापापरतः सदा।
परदाराभिचारी च वेश्यासक्तश्च मद्यपः।।17।।
पितुर्द्रव्यं तु तेनैव गमितं पापकर्मणा।
असद्वृत्तिरतो नित्यं भूसुराणां तु निन्दकः।।18।।
वैष्णवानां च देवानां नित्यं निंदां करोति सः।
ईदृशं तु ततो दृष्ट्वा पुत्रं माहिष्मतो नृपः।।16।।
नाम्ना तु लुम्पक इति राजपुत्रेषु चापठत्।
राज्यान्निष्कासितस्तेन पित्रा चैव तु बन्धुभिः।।20।।

इनमें ज्येष्ठ पुत्र हमेशा पापकर्म में लीन रहता था। वह दूसरे की पत्नी के पास जाया करता था, वेश्या में आसक्त था, मदिरा पीता था। इन पापकर्मों में उलने पिता का धन गँवा दिया। वह बुरे आचरण में लीन रहता था, वैष्णवों और देवताओं की निन्दा करता था। ऐसा देखकर माहिष्मत राजा ने उस लुम्पक नामक पुत्र को राज्य से निकाल दिया। अपने बन्धुनों बी उसे त्याग दिया।।

स चैवं परिवारैस्तु त्यक्तश्च परिपन्थिवत्।
लुम्पकोऽपि तथा त्यक्तश्चिन्तयामास वै तदा।।21।।
त्यक्तोऽहं बान्धवैः पित्रा राज्यान्निष्कासितः किल।
इति सञ्चिन्त्यमानोऽसौ मतिं पापे तदाकरोत्।।22।।
मया गन्तव्यमेवास्तु दारुणे गहने वने।
तस्माच्चैव पुरं सर्वं लुम्पयिष्यामि वै पितुः।।23।।

वह लुम्पक भी इस प्रकार परिवार के द्वारा परित्यक्त होकर रास्ते पर चलता हुआ सोचने लगी कि मैं तो बन्धुओं के द्वारा भी त्याग दिया गया हूँ। पिता ने मुझे राज्य से निकाल दिया है। इस प्रकार वह सोचता हुआ उसने पाप करने का निश्चय किया कि मैं अब घने तथा भयानक जंगल की ओर जाता हूँ और वहीं से मैं पिता के राज्य में लूट-पाट मचाऊँगा।

इत्येवं स मतिं कृत्वा लुम्पको दैवयोगतः।
निर्जगाम पुरात्तस्माद्गतोऽसौ गहने वने।।24।।
जीवघातरतो नित्यं स्तेयद्यूतकलानिधिः।
सर्वं च नगरं तेन मुषितं पापकर्मणा।।25।।

ऐसा सोचकर वह लुम्पक दैवयोग से उस नगर से घने वन में

चला गया। वहाँ चोरी और जुआ खेलने में निपुण वह जीवों को मारने लगा तथा उस पापी ने सभी नगरों से सब कुछ लूट लिया।।

स्तेयाभिगामी नगरे गृहीतः स निशाचरैः।
उवाच तान् सुतोऽहं वै राज्ञो माहिष्मतस्य च।।26।।

एक रात चोरी करता हुआ वह रात में चलनेवाले पहरेदारों के द्वारा पकड़ लिया गया। उसने पहरेदारों से कहा कि मैं माहिष्मत राजा का बेटा हूँ।

स तैर्मुक्तः पापकर्मा चागतो विपिनं पुनः।
आमिषाभिरतो नित्यं तरोर्वै फलभक्षणे।।27।।
आश्रमस्तस्य दुष्टस्य वासुदेवस्य सन्निधौ।
अश्वत्थो वर्त्तते तत्र जीर्णश्च बहुवार्षिकः।।28।।

वह उन पहरेदारों के द्वारा छोड़ दिये जाने पर फिर जंगल में लौट आया तथा मांस खाने वाला व्यक्ति वृक्षों से प्राप्त फलों को खाने लगा। उस दुष्ट का आश्रम भी भगवान् विष्णु के निकट था। वहाँ बहुत साल पुराना एक बूढ़ा पीपल का वृक्ष था।

देवत्वं तस्य वृक्षस्य विपिने वर्तते महत्।
तत्रैव निवसंश्चैव लुम्पकः पापबुद्धिमान्।।29।।

पूरे वन में उस वृक्ष को लोग देवता मानते थे। वहीं पर पाप में बुद्धि वाला लुम्पक रहने लगा।

गते बहुतिथे काले कस्यचित्पुण्यसंचयात्।
पौषस्य कृष्णपक्षे तु दशम्यां दिवसे तथा।।30।।
फलानि भुक्त्वा वृक्षाणां रात्रौ शीतेन पीडितः।
लुम्पक नाम पापिष्ठो वस्त्रहीनो गतेक्षणः।।31।।
पीड्यमानोऽतिशीतेन हरिवृक्षसमीपतः।
न निद्रा न सुखं तस्य गतप्राण इवाभवत्।।32।।

बहुत समय बीत जाने पर कुछ पुण्य संचित हो जाने के बाद पौष मास के कृष्ण पक्ष में दशमी की तिथि आयी। वह वृक्षों का फल खाकर रात में जाड़े से काँपता हुआ वह पापी लुम्पक, जिसके तन पर कपड़े भी नहीं थे संज्ञाहीन होकर जाड़े से अत्यधिक पीड़ित होता हुआ उस पीपल के वृक्ष के समीप नींद के विना बेचैन होता हुआ मरने-मरने को हो आया।

आच्छाद्य दशनैरास्यमेवं नीता निशाखिला।
भानूदयेऽपि पापिष्ठो न लेभे चेतनां तदा।।33।।

दाँत से मुख को बंद कर वह रातभर वहीं पड़ा रहा और सूर्य के उगने पर भी उस पापी को होश नहीं आया।

लुम्पको गतसंज्ञस्तु सफलाया दिने तथा।
रवौ मध्यङ्गते चैव संज्ञां लेभे स लुम्पक।।34।।

वह बेहोश लुम्पक सफला एकादशी के दिन सूर्य जब मध्य आकाश में पहुँचे यानी दोपहर होने पर होश में आया।

इतस्ततो विलोक्याथ व्यथितश्च तदासनात्।
स्खलत्पद्भ्यां प्रचलितः खञ्जन्निव मुहुर्मुहुः।।35।।

इधर-उधर देखकर वह दुःखी होता हुआ अपनी जगह से उठा तथा लटपटाते पैरों से बार बार लङड़ाता हुआ चलने लगा।

वनमध्ये गतस्तत्र क्षुत्क्षामः पीडितोऽभवत्।
न शक्तिर्जीवघाते तु लुम्पकस्य दुरात्मनः।।36।।

वह जंगल के बीच में गया जहाँ भूख से वह फिर पीड़ित हो गया। जीव को मारने की भी उस दुष्ट के पास शक्ति नहीं रह गयी थी।

फलानि च तदा राजन्नाजहार स लुम्पकः।
यावत्समागतस्तत्र तावदस्तं गतो रविः।।36।।

वह लुम्पक फल खाया तथा फिर वापस जबतक आया तब तक सूर्य अस्त हो गये थे।

किं भविष्यति तातेति स विलापं चकार ह।
फलानि तत्र भूरीणि वृक्षमूले न्यवेशयत्।।38।।
इत्युवाच फलैरेभिः श्रीपतिस्तुष्यतां हरिः।
इत्युक्त्वा लुम्पकश्चैव निद्रां लेभे न वै निशि।।39।।

अरे बाप, अब क्या होगा? -यह विलाप करने लगा। वह पीपल के वृक्ष की जड़ में बहुत सारे फल रख दिया और बोला इन फलों से श्री हरि प्रसन्न हों। यह कहकर लुम्पक रात भर जागता रहा , उसे नींद नहीं आयी।

रात्रौ जागरणं मेने विष्णुस्तस्य दुरात्मनः।
फलैस्तु पूजनं मेने सफलायास्तथानघ।।40।।

हे निष्पाप युधिष्ठिर, उस दुरात्मा का वह जागना ही जागरण हो गया तथा वहीं फल की ढेर लगाना ही उसकी सफला एकादशी की पूजा हो गयी।

अकस्माद्व्रतमेवैतत्कृतवान् वै स लुम्पक।
तेन पुण्यप्रभावेन प्राप्तं राज्यमकण्टकम्।।41।।

विना जाने ही यह लुम्पक ने यह व्रत कर लिया। इस पुष्य के प्रभाव से उसे निर्विघ्न राज्य मिल गया।

सूर्यस्योदयनं यावत्तावद्विष्णुर्जगाम ह।
दिवि तत्कालमुत्पन्ना वागुवाचाशरीरिणी।।42।।

सूर्योदय से पहले ही वहाँ भगवान् विष्णु पहुँच गये तथा उसी समय आकाश में विना शरीर के ही एक ध्वनि उत्पन्न हुई।

राज्यं प्राप्स्यसि पुत्र त्वं सफलायाः प्रसादतः।
तथेत्युक्ते तु वचसि दिव्यरूपधरोऽभवत्।।43।।

हे पुत्र, तुम सफला एकादशी के प्रभाव से अपना राज्य पाओगे। -ऐसा वाणी बोलकर उसने दिव्य रूप धारण कर लिया।

मतिरासीत्ततस्तस्य परमा वैष्णवी नृप।
दिव्याभरणशोभाढ्यो लेभे राज्यमकंटकम्।।44।।

इसके बाद से उस लुम्पक की बुद्धि विष्णुभक्ति की तरह हो गयी। वह दिव्य आभूषणों से चमकता हुआ अपना राज्य निर्विघ्न प्राप्त कर लिया।

कृतं राज्यं तु तेनैवं वर्षाणि दशपञ्च च।
मनोदास्तस्य पुत्रास्तु दाराः कृष्णप्रसादतः।।45।।

उसने पन्द्रह वर्षों तक राज्य किया। उसके पत्नियों के साथ पुत्रगण भी कृष्ण की कृपा से मन देनेवाले हुए

आशु राज्यं परित्यज्य पुत्रे चैव समर्प्य च।
गतः कृष्णस्य सांनिध्यं यत्र गत्वा न शोचति।।46।।

वह शीघ्र ही राज्य को छोड़कर उसे पुत्र को सौंपकर कृष्ण के सांनिध्य में गया, जहाँ जाने के बाद कोई चिन्ता नहीं रह जाती है।

एवं यः कुरुते राजन् सफलाव्रतमुत्तमम्।
इहलोके सुखं प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात्।।47।।

हे राजन्, जो इस प्रकार उत्तम सफला व्रत करते हैं वे इस लोक में सुख पाकर मृत्यु के बाद मोक्ष पा जाते हैं।

धन्यास्ते मानवा लोके सफलायां च ये रताः।
तेषां च सफलं जन्म नात्र कार्या विचारणा।।48।।

वे मनुष्य धन्य हैं, जो सफला एकादशी करते हैं। उनका जन्म सफल होता है, यहाँ चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

पठनाच्छ्रवणाच्चैव करणाच्च विशांपते।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानवः।।50।।

हे राज्य के स्वामी युधिष्ठिर, इस कथा के पढ़ने से, सुनने से तथा इस व्रत को करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ करने का फल पाते हैं।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायामुत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे पौषकृष्णा-सफलैकादशीनाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।40।।

इस प्रकार पचपन हजार श्लोकों वाले पद्म महापुराण के उत्तर खण्ड में शिव-नारद संवाद में पौष कृष्ण सफला एकादशी के नाम से चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

पौष शुक्ल एकादशी 'पुत्रदा' का माहात्म्य

युधिष्ठिर उवाच-
कथिता वै त्वया कृष्ण सफलैकादशी शुभा।
कथयस्व प्रसादेन शुक्लपक्षस्य या भवेत्।।1।।
किन्नाम को विधिस्तस्याः को देवस्तत्र पूज्यते।
कस्मै तुष्टो हृषीकेशस्त्वमेव पुरुषोत्तमः।।2।।

युधिष्ठिर ने पूछा हे कृष्ण, आपने सफला एकादशी का वर्णन किया। अब प्रसन्न होकर शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है उसके सम्बन्ध में कहें। इस,का क्या नाम है, क्या विधि है तथा किस देवता की पूजा होती है और आप पुरुषोत्तम हृषीकेश किस पर प्रसन्न होते हैं।

श्रीकृष्ण उवाच-
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि शुक्ला पौषस्य या भवेत्।
कथयामि महाराज लोकानां हितकाम्यया।।3।।

श्रीकृष्ण ने कहा- हे राजन् सुनो। मैं कहता हूँ। पौष मास के शुक्लपक्ष की जो एकादशी होती है उसे लोगों के कल्याण की कामना से कहता हूँ।

पूर्वेण विधिना राजन् कर्त्तव्यैषा प्रयत्नतः।
पुत्रदा नाम नाम्ना सा सर्वपापहरा परा।।4।।

हे राजन्, पूर्वोक्त विधि से ही यत्न के साथ यह एकादशी

करनी चाहिए। इसका नाम पुत्रदा है, जो सभी पापों को हरने वाली है।

नारायणोऽधिदेवोऽस्या कामदः सिद्धिदायकः।
नातः परतरा काचित्त्रैलोक्ये सचराचरे।।5।।

इस व्रत के देवता नारायण हैं। यह सिद्धि तथा कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है। इससे आगे इस स्थावर और जंगम तीनों लोकों में कोई नहीं है।

विद्यावन्तं यशस्वन्तं करोति च नरं हरिः।
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापहरां पराम्।।6।।

इससे श्रीहरि लोगों को विद्या प्रदान करते हैं, यश प्रदान करते हैं। हे राजन् मैं पाप को हरनेवाली इस एकादशी कथा कहता हूँ, सुनें।

भद्रावत्यां पुरा ह्यासीत्पुर्यां राजा सुकेतुमान्।
तस्य राज्ञस्तथा राज्ञी चम्पका नाम वर्त्तते।।7।।

भद्रावती नामक नगरी में प्राचीन काल में सुकेतुमान् नामक राजा थे तथा इनकी रानी का नाम चम्पका था।

पुत्रहीनेन राज्ञा च काले नीतो मनोरथैः।
नैवात्मजं नृपो लेभे वंशकर्त्तारमेव च।।8।।

वे राजा पुत्रहीन थे वे आस में बहुत दुनों तक रह गये। फिर भी राजा को वंश का कर्ता पुत्र नहीं हुआ।

तेनैव राज्ञा धर्मेण चिन्तितं बहुकालतः।
किं करोमि क्व गच्छामि सुतप्राप्तिः कथं भवेत्।।9।।

उसी राजा ने धर्मपूर्वक बहुत दिनों तक सोचा कि मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मुझे पुत्र की प्राप्ति कैसे होगी।

न राष्ट्रे न पुरे सौख्यं लेभे राजा सुकेतुमान्।
साध्व्या स्वकान्तया सार्द्धं प्रत्यहं दुःखितोऽभवत्।।10।।

राजा सुकेतुमान् को न तो राष्ट्र में नही अपनी नगरी में सुख मिलता था। वे सुन्दर विचारोंवाली अपनी पत्नी के साथ प्रतिदिन दुःखी रहा करते थे।

तावुभौ दम्पती नित्यं चिन्ताशोकपरायणौ।
पितरोऽस्य जलं दत्तं कवोष्णमुपभुञ्जते।।11।।

वे दोनों पति-पत्नी प्रतिदिन चिन्ता में डूबे रहते थे। उनके पितर भी उनके द्वारा दिये गये गुनगुना जल पीते थे।

राज्ञः पश्चान्न पश्यामो योऽस्मान्सन्तर्पयिष्यति।
इत्येवं संस्मरंतोऽस्य दुःखिताः पितरोऽभवन्।।12।।

राजा के बाद कौन मुझे तृप्त करेगा यह मैं नहीं देख रहा हूँ- इस प्रकार सोचते हुए उनके पितर भी दुःखी रहते थे।

न बान्धवा न मित्राणि नामात्याः सुहृदस्तथा।
रोचयन्त्यस्य भूपस्य न गजाश्वाः पदातयः।।13।।

इस राजा को न तो कोई सम्बन्धी न मित्र, न मन्त्री न कोई भला चाहनेवाले सुहाते थे न ही, होथी, घोड़े और पैदल सैनिक ही सुहाते थे।

नैराश्यं भूपतेस्तस्य नित्यं मनसि वर्त्तते।
नरस्य पुत्रहीनस्य नास्ति वै जन्मनः फलम्।।14।।

उस राजा की निराशा हर दिन उनके मन में रहती थी। सन्तानहीन मनुष्य को जन्म का फल नहीं मिलता है।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं हृदयं दुःखितं सदा।
पितृदेवमनुष्याणां नानृणत्वं सुतं विना।।15।।

सन्तानहीन मनुष्य का घर सूना-सूना रहता है, हृदय सदा दुःखी रहता है। पितर, देवता तथा मनुष्य के ऋणों से वह सन्तान के विना उऋण नहीं हो सकता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुतमुत्पादयेन्नरः।
इह लोके यशस्तेषां परलोके शुभा गतिः।।16।।
येषां तु पुण्यकर्तृणां पुत्रजन्मगृहे भवेत्।
आयुरारोग्यसंपत्तिस्तेषां गेहे प्रवर्तते।।17।।
पुत्रजन्म गृहे येषां लोकानां पुण्यकारिणाम्।
पुण्यं विना न च प्राप्तिर्विष्णुभक्तिं विना नृप।।18।।

इसलिए हर प्रकार से प्रयत्न कर मनुष्य सन्तान उत्पन्न करें। इस लोक में तथा परलोक में में उनका यश होता है तथा परलोक में गति होती है। जिस पुण्यवान् के घर में सन्तान की उत्पत्ति होती है उनके घर में आयु, आरोग्य और सम्पत्तियाँ आतीं हैं। हे राजन्, जिन पुण्यवान् व्यक्ति के घर में सन्तान की उत्पत्ति होती है वह पुण्य विष्णु की भक्ति के विना नहीं आती है।

पुत्राश्च सम्पदो वापि निश्चयादिति मे मतिः।
एवं विचिन्त्यमानोऽसौ न शर्म लभते नृपः।।19।।
प्रत्यूषे चिन्तयद्राजा निशीथेऽचिन्तयत्ततः।

स्वयमात्मविनाशं च चिन्तयामास केतुमान्।।20।।

सन्तान अथवा सम्पत्तियाँ भी निश्चय करने से होती है एसा मैं मानता हूँ। इस प्रकार सोचते हुए राजा को सुख नहीं मिला। सुबह में सोचे हुए राजा रात में भी वहीं सोचते थे। वे केतुमान राजा आत्महत्या करने की भी बात सोची।

आत्मघाते दुर्गतिं च चिन्तयित्वा तदा नृपः।
दृष्ट्वात्मदेहं पतितमपुत्रत्वं तथैव च।।21।।
पुनर्विचार्यात्मबुद्ध्या आत्मनो हितकारणम्।
अश्वारूढस्ततो राजा जगाम गहनं वनम्।।22।।

आत्महत्या करने से दुर्गति होगी यह सोचकर राजा स्वयं को संततिहान जानकर अपने शरीर को पतित समझकर फिर विचार कर अपना हित करने के लिए घोड़े पर सवार होकर गहन वन में चले गये।

पुरोहितादयः सर्वे न जानन्ति गतं नृपम्।
गम्भीरे विपिने राजा मृगपक्षिनिषेविते।।23।।
विचचार तदा राजा वनवृक्षान्विलोकयन्।
वटानश्वत्थबिल्वांश्च खर्जूरान् पनसांस्तथा।।24।।
बकुलान्सप्तपर्णांश्च तिन्दुकांस्तिलकानपि।
शालांस्तालांस्तमालांश्च ददर्श सरलान्नृपः।।25।।
इंगुदी ककुभांश्चैव श्लेष्मातकनगांस्तथा।
शल्लकान्करमर्दांश्च पाटलान्बदरानपि।।26।।
अशोकांश्च पलाशांश्च शृगालाञ्शशकानपि।
वनमार्जारमहिषान्शल्लकांश्चमरानपि ।।27।।

पुरोहित आदि यह नहीं जानते थे कि राजा कहाँ गये। इस प्राकर राजा गहन वन में जहाँ हिरण तथा पक्षीगण रहा करते थे वहाँ वन के वृक्षों को देखते हुए घूमने लगे। बड़, पीपल, बेल, खजूर, कटहल, बकुल, छतवन, तेनु, तिलै, सँखुआ, ताड़, तमाल, सड़र, हिंगोट, ककुभ, श्लेष्मातक, नग, शल्लक, करमर्द, पाटल, बेर, अशोक, पलाश, आदि वृक्षों को तथा सियार, खरगोश, वनबिलाड़, भैसा. शल्लक, गोधा चमर आदि को देखने लगे।

ददर्श भुजगान्राजा वल्मीकादर्द्धनिःसृतान्।
तथा वनगजान् मत्तान् कलभैः सह संगतान्।।28।।
यूथपांश्च चतुर्दन्तान्करिणीयूथमध्यगान्।
तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास आत्मनः स गजान्नृपः।।29।।

उन्होंने देखा कि कैसे बाँबी से आधे साँप निकले हुए हैं। साथ ही, दंगली मत्त हाथियों को भी उन्हों ने अपने हतिनियों के साथ देखा। उन झुंडों के बीच चलनेवाले चार दाँतो वाले सरदार हाती को भी देखा तथा उन्हें देखकर राजा ने अपने हाथी के बारे में सोचा।

तेषां स विचरन् मध्ये राजा शोभामवाप ह।
महदाश्चर्यसंयुक्तं ददृशे विपिनं नृपः।।30।।
मार्गे शिवारुतान् शृण्वन्नुलूकविरुतं तथा।
तांस्तानृक्षमृगान्पश्यन् बभ्राम वनमध्यतः।।31।।

उनके बीच घूमते राजा शोभित हो रहे थे। राजा ने बड़े आश्चर्य से भरे उस वन को देखा। रास्ते में सियारों का सियारों का फेंकना तथा उल्लुओं की आबाज सुनते उन उन रीछों और हिरणों को देखते हुए राजा वन में घूमते रहे।

एवं ददर्श गहनं नृपो मध्यगते रवौ।
क्षुत्तृड्भ्यां पीडितो राजा इतश्चेतश्च धावति।।32।।

इस प्रकार राजा ने दोपहर होने तक वन को देखा तो भूख और प्यास से व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगे।

नृपतिश्चिन्तयामास संशुष्कगलकन्धरः।
मया तु किं कृतं कर्म प्राप्तं दुःखं यदीदृशम्।।33।।
मया वै तोषिता देवा यज्ञैः पूजाभिरेव च।
तथैव ब्राह्मणा दानैस्तोषिता मिष्टभोजनैः।।34।।
प्रजाश्चैव सदा कालं पुत्रवत्पालिता भृशम्।
कस्माद्दुःखं मया प्राप्तमीदृशं दारुणं महत्।।35।।

सूखा गला एवं कंधावाले राजा ने मन में सोचा कि मैंने ऐसा क्या किया कि मुझे यह दुःख मिला है। मैंने यज्ञों तथा पूजाओं के द्वारा देवों को संतुष्ट किया, दान और मीठा भोजन से ब्राह्मणों को संतुष्ट किया, अपनी प्रजा का पालन भी पुत्र के समान करता रहा, तब भी मुझे क्यों यह दारुण दुःख मिला।

इति चिन्तापरो राजा जगामैवाग्रतो वनम्।
सुकृतस्य प्रभावेन सरो दृष्टमनुत्तमम्।।36।।

इस प्रकार चिन्तित होकर राजा आगे वन में चलते गये। उनके पुण्य के प्रबाव से वहाँ एक सरोवर दिखाई दिया।

मीनसंस्पर्शमानं च पद्मैश्चापरशोभितम्।
कारण्डैश्चक्रवाकैश्च राजहंसैश्च शोभितम्।।37।।

छूने से ही मछलियाँ मिलने वाला वह सरोवर कमल के फूलों से शोभित था। वहाँ कारण्डव, चकबा, राजहंस आदि पक्षी शोभित हो रहे थे।

मकरैर्बहुभिर्मत्स्यैरन्यैर्जलचरैर्युतम् ।
समीपे सरसस्तस्य मुनीनामाश्रमान्बहून्।।38।।

घड़ियाल तथा बहुत सारी मछलियों, एवं जलचरों से भरे उस सरोवर के समीप मुनियों के अनेक आश्रम थे।

ददर्श राजा लक्ष्मीवान्शकुनैः शुभशंसिभिः।
दक्षिणं प्रास्फुरन्नेत्रमथ सव्येतरः करः।।39।।
प्रास्फुरन्नृपतेस्तस्य कथयञ्शोभनं फलम्।
तस्य तीरे मुनीन्दृष्ट्वा कुर्वतो नैगमं जपम्।।40।।

उस लक्ष्मीवान् राजा ने शुभ फल देने वाले शकुनों को देखा। उनकी दाहिनी आँख फड़क रही थी तथा वायाँ हाथ बी फड़क रहा था, जो शुभ फल बतला रहे थे। उस सरोवर के तट पर उन्होंने वेद का जप करते हुए मुनियों को उन्होंने देखा।

हर्षेण महताविष्टो बभूव नृपनन्दनः।
अवतीर्य हयात्तस्मान्मुनीनामग्रतः स्थितः।।41।।
पृथक्पृथग्ववन्देऽसौ मुनींस्तान् शंसितव्रतान्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा दण्डवच्च पुनः पुनः।।42।।
प्रत्यूचुस्तेऽपि मुनयः प्रसन्ना नृपते वयम्।

राजा अत्यन्त हर्ष से भर गये। वे घोड़े से उतर कर मुनियों के सामने आकर व्रतों में लीन मुनियों को अलग-अलग प्रमाम किया। वे अंजलि बाँध कर तथा बार बार दण्ड प्रणाम करते रहे। उन मुनियों ने भी उन्हें उत्तर दिया कि कि हे राजन् हमलोग प्रसन्न हैं।

राजोवाच-

के भवन्तोऽत्र कथ्यन्तां का चाख्या भवतामपि।
किमर्थं संगता यूयंसत्यं वदत मेऽग्रतः।।43।।

राजा बोले- आपलोग कौन हैं, आपके क्या नाम हैं, आप सभी एक साथ क्यों यहाँ हैं, यह मेरे सामने सत्य कहें।

मुनय ऊचुः-

विश्वेदेवा वयं राजन्स्नानार्थमिह चागताः।
माघो निकटमायात एतस्मात्पञ्चमेऽहनि।।44।।
अद्य चैकादशी राजन् पुत्रदा नाम नामतः।
पुत्रं ददात्यसौ विष्णुः पुत्रदाकारिणां नृणाम्।।45।।

मुनियों ने कहा- हे राजने हमलोग विश्वेदेव हैं तथा यहाँ स्नान करने के लिए आये हैं। माघ का मास निकट आ रहा है। आज से पाँच दिन के बाद वह होगा। आज एकादशी की तिथि है, जिसका नाम पुत्रदा है। पुत्रदा एकादशी करनेवालों को विष्णु भगवान् पुत्र देते हैं।

राजोवाच-

एष वै संशयो मह्यं पुत्रस्योत्पादने महान्।
यदि तुष्टा भवन्तो वै पुत्रं मे दीयतां तदा।।46।।

राजा बोले- यही तो मेरी भी महती जिज्ञासा है कि सन्तान की उत्पत्ति कैसे होगी। यदि आप संतुष्ट हैं तो मुझे पुत्र दें।

मुनिरुवाच-

अद्यैव दिवसे राजन् पुत्रदा नाम वर्तते।
एकादशीति विख्यातं क्रियतां व्रतमुत्तमम्।।47।।
अभिषेकात्ततोऽस्माकं केशवस्य प्रसादतः।
अवश्यं तव राजेन्द्र पुत्रप्राप्तिर्भविष्यति।।48।।

मुनि ने कहा- हे राजन्, आज ही तो पुत्रदा नामक विख्यात एकादशी है। आप यह व्रत करें। केशव की कृपा से तथा हमलोगों के द्वारा अभिषेक करने से आपको अवश्य सन्तान की प्राप्ति होगी।

इत्येवं वचनात्तेषां कृतं राज्ञा व्रतोत्तमम्।
मुनीनामुपदेशेन पुत्रदा या विधानतः।।49।।
द्वादश्यां पारणं कृत्वा मुनीन् नत्वा पुनः पुनः।
आजगाम गृहं राजा राज्ञी गर्भमथादधौ।।50।।

उन मुनियों के द्वारा इस प्रकार कहने पर राजा ने विधान पूर्वक मुनियों के कहे अनुसार वह उत्तम पुत्रदा एकादशी का व्रत किया। उन्होंने द्वादसी में पारणा की और मुनियों को बार बार प्रणाम कर अपने घर आये और रानी ने गर्भ धारण किया।

पुत्रो जातः सूतिकाले तेजस्वी पुण्यकर्मणा।
पितरं तोषयामास प्रजापालो बभूव सः।।51।।

प्रसव काल में तेदस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अपने पुण्य के प्रभाव से पितरों को संतुष्ट किया तथा प्रजापालक राजा बना।

तस्माद्राजन् प्रकर्त्तव्यं पुत्रदा व्रतमुत्तमम्।
लोकानां तु हितार्थाय तवाग्रे कथितं मया।।52।।

हे राजन् युधिष्ठिर, इसलिए लोगों को पुत्रदा एकादशी का व्रत करना चाहिए। मैंने लोगों के कल्याण के लिए आपके समक्ष यह कहा।

एकचित्तास्तु ये मर्त्याः कुर्वंति पुत्रदा व्रतम्।
पुत्रान्प्राप्येह लोके तु मृतास्ते स्वर्गगामिनः।
पठनाच्छ्रवणाद्राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत्।।53।।

एकाग्र होकर जो मनुष्य इस पुत्रदा एकादशी व्रत करते हैं वे इस लोक में सन्तति पाकर मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग को जाते हैं। इस कथा के पढने से, सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्साहस्र्यां संहितायामुत्तरखण्डे उमापतिनारदसंवादे पौषशुक्ल-पुत्रदैकादशीनाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः।।41।।

इस प्रकार पचपन हजार श्लोकों वाले पद्म महापुराण के उत्तर खण्ड में शिव-नारद संवाद में पौष शुक्ल सफला एकादशी के नाम से एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

सम्पादक, भवनाथ झा के द्वारा हिन्दी में अनूदित

***

'हरिचरित्र' महाकाव्य के अप्रकाशित अंश का क्रमशः प्रकाशन (पृ. सं. 39 का शेषांश)

106 अध्याय तक लिखकर उसे पूरा किया। माना जाता है कि सन्त लालच दास ने बिहार के वर्तमान समस्तीपुर जिला में रोसड़ा में रहकर यह रचना की थी। मिथिला सहित पूरे बिहार में यह रचना काफी प्रसिद्ध थी। बुकानन ने भी पूर्णिया रिपोर्ट में लालच दास की इस रचना का उल्लेख घर-घर पढी जानेवाली पुस्तक के रूप में किया है।

इस विशाल महाकाव्य का प्रकाशन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से आरम्भ हुआ, किन्तु 25 अध्यायों तक ही प्रकाशित हो सका। महावीर मन्दिर के पुस्तकालय में इसकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जो कैथी लिपि में है। इस पाण्डुलिपि की प्राप्ति की घटना भी अद्भुत है। आज से लगभग 5 वर्ष पहले पटना की ही एक महिला मन्दिर पर आयी और उसने मुझे यह पाण्डुलिपि मुझे दी, और कहा- "मेरे ससुरजी के पिताजी इसे पढ़ते थे। उनका देहान्त हो गया, उसके बाद मेरे ससुरजी भी कभी-कभार इसे खोलते थे। अब वे भी नहीं हैं। मैं अनुभव कर रही हूँ कि इस पुस्तक की पूजा नहीं हो पाने के कारण मेरे घर पर संकट आ रहे हैं। मैं तो इसे गंगा में प्रवाहित करने जा रही थी, लेकिन रात में मुझे हनुमानजी ने स्वप्न दिया कि इसे लेकर महावीर मन्दिर को सौंप दो, अतः मैं यहाँ यहाँ लेकर चली आयी हूँ।" यह संवाद अविकल इसलिए दिया जा रहा है ताकि पाण्डुलिपियों के प्रति आम लोगों के मन की बात हम जान सकें जो इनके संरक्षण के लिए सहायक हों।

मैंने वह पाण्डुलिपि रख ली। इसमें 88 अध्याय तक के अंश हैं। देखने से यह लगभग 200 वर्ष की पाण्डुलिपि प्रतीत होती है। इसकी लिपि कैथी है, जिसका वाचन में कर पा रहा हूँ। इसका क्रमशः प्रकाशन मेरे सम्पादन में माघ अंक से किया जायेगा। यद्यपि पूर्व प्रकाशित 25 अध्यायों का मिलान करने पर बहुत पाठान्तर हैं, फिर भी इस प्राप्त पाण्डुलिपि का पाठ प्रकासित कर देने की योजना है ताकि अग्रतर सम्पादक को एक पाठ उपलब्ध हो सके।

- भवनाथ झा, सम्पादक

श्री अम्बिकेश कुमार मिश्र

विष्णु : व्यापक वैश्विक स्वरूप

सनातन धर्म केवल आधुनिक भारत का ही नहीं, इसका व्यापक स्वरूप विश्व के अनेक देशों में फैला हुआ है। सनातन परम्परा में उपास्य देव सूर्य तो विश्व तो अनेक प्राचीन संस्कृतियों में परम आराध्य देव रहे हैं। सूर्य के वैश्वित व्यापक स्वरूप पर 'धर्मायण' की अंक संख्या 100 में विवेचना हो चुकी है। यहाँ विष्णु के व्यापक स्वरूप पर विवेचन किया गया है कि भारत एवं दक्षिण एशिया के अनेक देसों में पुरातात्त्विक आधार पर विष्णु की उपासना के प्रमाण मिलते हैं। कंबोडिया, जाबा, बाली आदि देशों में ऐसे अनेक राजा हुए हैं, जिनका राजधर्म सनातन था।

वर्तमान में जब संसार की अधिकांश प्राचीन संस्कृति अपना अस्तित्व खो चुकी है, तब भी भारतीय वैदिक संस्कृति संरक्षित है। इसका मूल कारण है- दूसरे धर्मों की अच्छाई को आत्मसात् करने की इसकी प्रवृत्ति, ईश्वरवाद और आस्तिकता। भारतीय समाज में प्राचीनतम काल में भी देवता लोगों के आराध्य थे, जिसका उदाहरण सैन्धव सभ्यता की मातृदेवी और पशुपति हैं। कुछ भारतीय इतिहासकारों ने तो शैव को दुनिया का सबसे प्राचीन धर्म माना है। यहाँ आस्था के आधार पर अपने अपने देवता हैं और लोग अपनी मान्यताओं के आधार पर वैष्णव, शैव या शाक्त आदि कहलाते हैं। हिन्दू आख्यानों में त्रिदेव में सबसे अधिक व्यापक और लोकमानस से जुड़े जो देवता हैं वे विष्णु ही हैं। जिन्हें लोगों के पालन का भार मिला है और चूँकि पालक पिता को कहा गया है अतः विष्णु ही सम्पूर्ण चराचर जगत के पिता हैं। तभी तो 18 पुराणों में सबसे अधिक प्रसंग विष्णु का ही आया है।

शिव संहारक हैं, ब्रह्मा हैं निर्माता
जो पाले-पोसे अंग सभी, वो विष्णु विश्व विधाता।

जब कभी जगत् में कोई भी विपत्ति आई विष्णु ने उसका निवारण किया। कभी मत्स्य रूप लेकर तो कभी वाराह, कभी नृसिंह बनकर तो कभी वामन। विष्णु वैदिक देवता हैं, इन्हें वेद में सूर्य भी कहा गया है। वैदिक काल में विष्णु की महत्ता क्या रही होगी इसका अनुमान ऋग्वेद के श्लोक 1.22.20 में कहे गए श्लोक से ही स्पष्ट हो जायेगा।

ॐ तद् विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः। (ऋग्वेद1.22.20)

अर्थात् विष्णु सर्वोपरि हैं और सभी देवता सदैव उनके स्थान को देखते हैं। विष्णु का वर्णन ऋग्वेद में किसी निर्बल देवता के रूप में नहीं हुआ है बल्कि वे इन्द्र के सामान ही बलशाली और वीर्यवान् माने गए हैं।

ऋग्वेद के 10.154.02 में कहा गया है-

प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।।

अर्थात्: भयंकर पर्वत पर रहने वाला (गिरिष्ठाः), स्वतन्त्रता में विचरण करने वाला सिंह(कुचर) जिस प्रकार प्राणियों में अपने पराक्रम के लिए विख्यात है, उसी प्रकार विष्णु भी अपने पराक्रम के कारण ही मनुष्यों में स्तुति के पात्र हैं।

ऋग्वेद के 1.154.4 में कहा गया है कि विष्णु ने अपने तीन डगों में ही समग्र विश्व को माप लिया। आचार्य शाकपूणि के अनुसार(अर्वाचीन संहिताओं में तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में)

सदस्य: रिसर्च विंग, 'सेंटर फॉर स्टडीज ऑफ ट्रेडिशन एंड सिस्टम' (दिल्ली), पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान के छात्र, पताः 3728 2nd फ्लोर, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,दिल्ली-110002

विष्णु के तीन पद का सम्बन्ध जगत् के पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश से है। जबकि आचार्य और्णवाभ इसे सूर्य की दैनन्दिनी परिक्रमा के रूप में उदय स्थान, मध्य बिन्दु और अन्त में देखते हैं।

ऋग्वेद का उक्त श्लोक विष्णु को वामन से जोड़ता है-

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।

य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा।। (ऋग्वेद 1.154.4)

वेद में विष्णु का सम्बन्ध गायों से भी दिखता है, ऋग्वेद के श्लोक 1.22.18 में कहा गया है "**विष्णुर्गोपा अभादयः**" अर्थात्, विष्णु अजेय गोप हैं। तभी विष्णु का सर्वोच्च पद गोलोक है और वैष्णव धर्म में विष्णु ही कृष्ण हैं।

न केवल वेद, अपितु ब्राह्मण ग्रन्थों में भी विष्णु की महत्ता दृष्टिगोचर होती है, जहाँ इन्हें समस्त देवताओं में श्रेष्ठ माना गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्हें देवताओं में परम कहा गया है।

वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों को छोड़ दें, तो पौराणिक काल में अलग-अलग राजवंशों में विष्णु की उपासना के चिह्न पाए जाते हैं। मौर्य से लेकर गुप्त काल और उसकें बाद के वंशों में इन्हें पूजा जाता रहा है। मौर्य काल मे कृष्ण पूजा को मेगास्थनीज ने भी व्यक्त किया है, जो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मकदूनियाई राजदूत था। गुप्त शासक तो स्वयं को परम भागवत सम्बधित करते थे, जो उन्हें विष्णु से जोड़ता है। गुप्त शासकों के अभिलेखों पर प्राप्त विष्णु की स्तुति और गुप्त शासको द्वारा बनाए गए मन्दिर में, विष्णु के मन्दिरों की अधिकांश संख्या इस बात का संकेत है कि विष्णु का गुप्तकालीन समाज में क्या महत्त्व रहा होगा। तब वैष्णव धर्म राजधर्म था।

गुप्तकालीन मन्दिर में विष्णु के कुछ मन्दिर काफी प्रमुख हैं जिनमें है- एरन का वैष्णव-वाराह मन्दिर, तिगवा का मन्दिर, देवलगढ़ का दशावतार मन्दिर आदि प्रमुख है। गुप्तकालीन 426 ई. गंगाधर अभिलेख से यह जानकारी मिलती है कि उस समय देवोत्थान एकादशी का महत्त्व समाज में था। लोगों में तब भी ये विश्वास था कि विष्णु कार्तिक शुक्ल पक्ष को जागते हैं।

गुप्तकाल में न सिर्फ भारत बल्कि भारत के बाहर भी विष्णु की उपासना का चलन था। इतिहास के हुए अध्ययन और श्रीमद्भागवत की मानें तो विष्णु यवनों के भी उपास्य देवता थे।

भागवत स्कन्ध-2 अध्याय चार के श्लोक 18 में इन जातियों का उल्लेख हुआ है, जिन्होंने भगवान् का आश्रय प्राप्त कर लिया था, उन्में से कुछ ये हैं – हूण, किरात, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस, आभीर, यवन, खस। विदेशियों के द्वारा वैष्णव धर्म में दीक्षित होने की घटना का पता हमें भारतीय इतिहासों और शिलालेखों से सप्रमाण मिलता है।

इस प्रसंग में परम भागवत हेलियोडोरस नामक यवनदूत का चर्च नितान्त उचित है। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के बेसनगर अभिलेख से पता चलता है कि वह ग्रीक शासक एंटियालकिडस का दूत बनकर विदिशा-मण्डल के राजा काशीपुत्र भाग्रपद के दरबार में आया था और यहीं उसने विष्णु की पूजा के लिए गरुडध्वज की स्थापना की और खुद को परम भागवत की उपाधि से विभूषित किया। इससे स्पष्ट है कि वह विष्णु की उपासना में सर्वतोभावेन दीक्षित हो गया था। न सिर्फ भारत बल्कि भारत के बाहर भी विदेशियों ने विष्णु को अपना उपास्य बनाया।

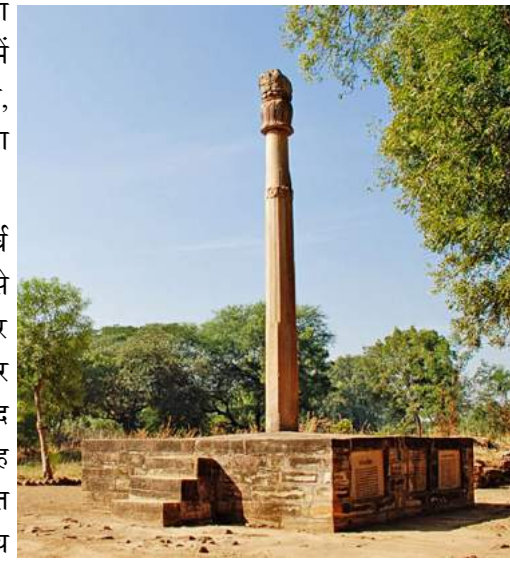

हेलियोडोरस का गरुड़-स्तम्भ, विदिशा

भारत के बाहर विष्णु:

1. जावा- जावा में वैष्णव धर्म का इतिहास प्राचीन है। वैसे तो यहाँ तो यहाँ शैव धर्म की प्रधानता व्यापक रूप से विद्यमान थी, लेकिन यह जीवन स्तर पर प्रभाव की दृष्टि से वैष्णव अद्वितीय धर्म था। यहाँ राजवंशों में शैव धर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म के प्रति सम्मान और आदर की भावना अधिक थी। जावा में लक्ष्मी-विष्णु और गरुड़ की मूर्ति बहुत संख्या में पायी जाती है। यहाँ विष्णु के नाना अवतारों की प्रतिमा उपलब्ध होती है। जिनमें राम, कृष्ण, वाराह, नृसिंह मत्स्य अवतार की मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेख्य है। विष्णु के आयुधभूत शंख, चक्र, गदा और पद्म का पृथक रूप से अंकन भी वहाँ मिलता है। विष्णु से सम्बन्धत यहाँ का 'लोरा-जोंगरंग' का बृहदाकार मन्दिर महत्त्वपूर्ण है। इसकी रचना नवम शती के समय की है। इस मन्दिर में ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों की प्रतिमा अवस्थित है। यहाँ बेल्हन नामक स्थान पर विष्णु की एक उदात्त मूर्ति है जिसमें औदार्य तथा शांतिभाव का अद्भुत मिश्रण है। जावा के सामाजिक जीवन और कला पर वैष्णव धर्म का प्रभाव अभी भी स्पष्ट दिखता है।

2. थाईलैंड- वैसे तो थाईलैंड बौद्धबहुल देश है और यहाँ के लोग बौद्धधर्म को मानते हैं, लेकिन इस देश में भी विष्णुधर्म के प्रति लोगों में श्रद्धा तथा सम्मान कम नहीं है। 1350 में सुवनपूनी के राजा ने अयोध्या नामक नवीन राजधानी की स्थापना की और रामाधिपति नाम से स्वतन्त्र राज्य करने लगा। इस तरह बौद्ध प्रधान देश में राम अज्ञात नहीं रहे।

3. चम्पा- चम्पा के इतिहास में भी विष्णु की महत्ता कम नहीं दिख पड़ती। यहाँ भी विष्णु के अवतारों की मूर्तियाँ दिखाई पड़ती है जिसमें कृष्ण और राम के शौर्यमण्डित चरित्र विशेष रूप से उपलब्ध है। यहाँ विष्णु अनेक नामों से अभिहित किये गए हैं यथा पुरुषोत्तम, नारायण, हरि तथा गोविन्द। विष्णु की शक्ति लक्ष्मी यहाँ पद्मा तथा श्री के नाम से चम्पा की मान्य देवी मानी जाती है। गरुड़ चम्पा का लोकप्रिय पक्षी है, इसकी मूर्ति यहाँ जगह-जगह में पायी जाती है

4. कम्बोडिया- इस देश के महनीय महिपालों ने भगवान् विष्णु के प्रति असीम श्रद्धा तथा अपार भक्ति का प्रदर्शन शिलालेखों और विशालकाय मन्दिर में खूब भली भांति किया है। यहाँ हिन्दू मन्दिर में कभी प्रतिदिन रामायण,महाभारत तथा पुराणों के प्रवचन की व्यवस्था थी। अंकोरवाट का कम्बोज मन्दिर विष्णु के प्रति तत्कालीन सामाज के श्रद्धा का उदाहरण है। यह मन्दिर वैष्णव का संसार में सबसे अद्वितीय मन्दिर है।

अष्टभुज विष्णु की प्रतिमा, अंकोरवाट, कंबोडिया

5. बालिद्वीप- यहाँ आज भी हिन्दू धर्म का उतना ही बोलबाला है जैसा कभी प्राचीन काल में था। पूरे द्वीप में हिन्दू संस्कृति विशुद्ध रूप में आज भी विद्यमान है। बालि में अनेक हिन्दू देवी देवताओं की उपासना प्रचलित है, जिसमें विष्णु की भक्ति विशेष महत्त्व रखती है। यहाँ भगवान् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी श्री देवी के नाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। श्री देवी धान की देवी हैं इसलिए वह यहाँ श्रीतांडुली भी विख्यात हैं। यहाँ धान की विभिन्न अवस्थाएं हिन्दू देवियों के नाम पर रखी हुई है,यथा- धान के बीज का नाम है- उमादेवी, धान के नवीन पौधे के लिए गिरिनाथ सम्बधन होता है तथा जब धान को एक जगह से उठाकर दूसरे जगह बो दिया जाता है तो इसका नाम गंगीदेवी हो जाता है। बालि निवासियों की यह दृढ विश्वास है कि श्री-देवी का सम्बन्ध धान की उत्पत्ति तथा खेती के साथ मुख्य रूप से है। जिसके लिए उनके मध्य पौराणिक कथा है जिसमे श्रीदेवी का किसी दैत्य द्वारा हरण किये जाने का वृत्तांत है और श्रीदेवी के मृत्यु के उपरान्त उनके नाभिस्थल से धान की उत्पत्ति हुई थी। विष्णु की स्तुति में बालि में दो स्तोत्र प्रसिद्ध हैं- विष्णुपंजर स्तोत्र तथा विष्णुस्तव।

इन देशों के अलावा दक्षिण-पूर्वी एशिया, हिन्दचीन, मलाया, मैक्सिको, रूस, स्पेन, ईराक, वियतनाम इंडोनेशिया और अन्य देशों तक विष्णु उपासना फैली थी। इंडोनेशिया में तो विष्णु की सबसे बड़ी प्रतिमा अवस्थित है, जो करीब 122 फुट ऊँची और 64 फीट चौड़ी है। इस मूर्ति को बनाने में 28 साल लगे थे, जो 2018 में बनकर तैयार हुआ।*

रूस में खुदाई के दौरान आज भी हिन्दू देवताओं की प्रतिमा मिल जाती है। कुछ वर्ष पूर्व ही रूस में वोल्गा प्रान्त के स्ताराया मायना (Staraya Maina) गाँव में विष्णु की प्रतिमा मिली थी जो 7-10 वीं शताब्दी का बताया गया था। इन सब प्राप्त सबूतों से पता चलता है कि हिन्दू सभ्यता की जड़ कितनी गहरी थी।

*इंडोनेशिया निर्मित आधुनिक गरुड़विष्णु प्रतिमा

अध्ययन स्रोत

1.बुंदेलखंड के वैष्णव मन्दिर का सांस्कृतिक अध्ययन, शोध प्रबंध, शोधार्थी-वरुण तिवारी,दयानंद वैदिक विद्यालय, उरई(उ.प्र.)

2. गुप्तकालीन वैष्णव धर्म, शोध प्रबंध, नीता स्टीफन, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी(उ.प्र.)

3. प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक अध्ययन, विद्यालंकार सत्यकेतु,प्रकाशक-श्री सरस्वती सदन,मसूरी।1978

4.भागवत संप्रदाय, बलदेव उपाध्याय; प्रकाशक: नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।1953

5.वैष्णव,शैव और अन्य धार्मिक मत, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, प्रकाशक: भारतीय विद्या प्रकाशन:वाराणसी। 1967

6. https://timesofindia.indiatimes.com/world/rest-of-world/Ancient-Vishnu-idol-found-in-Russian-town/articleshow/1046928.cms.

***

सनातन धर्म में गृहस्थ आश्रम एवं पति-पत्नी के आदर्श

श्री राधा किशोर झा*

आधुनिक नारीवादियों ने परिवार और समाज में स्त्री की स्थिति को लेकर काफी बाबेला मचाया है। आधे-अधूरे उद्धरणों का मनमाने अर्थ लगाकर सनातन परम्परा पर आरोप लगाये गये हैं। मूलग्रन्थों को पढ़े विना उनके प्रसंगों को जाने विना सनातन परम्परा का दूषित करने का प्रयास किया गया है। लेखक ने गार्हस्थ आश्रम की मर्यादा तथा उस प्रसंग में नारी की स्थिति और पति-पत्नी के कर्तव्यों का सांगोपांग विवेचन कर वस्तुस्थिति का प्रतिपादन किया है। विवाह में दहेज को लेखक की मान्यता है कि जिस विवाह में लेन-देन हो, वह राक्षस विवाह है, जिसे अधम माना गया है। इससे हमें बचना चाहिए।

आश्रम धर्म का द्वितीय एवं महत्त्वपूर्ण चरण गृहस्थाश्रम है। यह शेष तीनों आश्रमों का धारक है अतः अति महत्त्वपूर्ण है। गौतम धर्मसूत्र में भी इस आश्रम को प्रधान आश्रम माना गया है-

ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद् गार्हस्थ्यस्य गार्हस्थ्यस्य।[1]

बौधायन धर्मसूत्र में भी एकाश्रमता पर ही जोड़ दिया गया है-

एकाश्रम्यं त्वाचार्या अप्रजत्वारितरेषाम्। अर्थात् आचार्यो का कथन है कि केवल एक आश्रम ही है क्योंकि अन्य आश्रमों में पुत्रोत्पत्ति नहीं होती है।[2]

सभी आचार्य एक ही आश्रम मानते हैं, क्योंकि वही अन्य आश्रमों का उपजीव्य है। अथवा इस गृहस्थाश्रम में अशक्त व्यक्तियों के लिए ही दूसरे आश्रम का विधान किया गया है।

सद्गृगस्थ ही अपने कर्तव्यों के द्वारा देव, पितर, ऋषि मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों को धारण करता है। अतः गृहस्थ धर्म सनातन धर्म का रीढ है।[3]

तैत्तिरीय उपनिषद् के शीक्षावल्ली के ग्यारहवें अनुवाक में आचार्य अपने अन्तेवासी को विद्याध्यनोपरान्त उपदेश देते हैं कि प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः[4] प्रजातन्तु को विच्छिन्न मत करो। छन्दोग्य उपनिषद् में ऋषि उपदेश देते हैं-

आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाधयमधीयानो धार्मिकान्विदधतात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिं- सन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेव वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न पुनरावर्तते।।[5]

अर्थात् नियमानुसार गुरु के कर्तव्य कर्मो को समाप्त करता हुआ वेद का अध्ययन कर आचार्यकुल से समावर्तन कर कुटुम्ब में स्थित ही पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ (पुत्र एवं शिष्य को) धार्मिक कर सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर शास्त्र की आज्ञा के अन्यत्र प्राणियों की हिंसा न करता हुआ वह निश्चय ही आयु की

सन्दर्भ-

1. गौतम धर्मसूत्र, 1.3.35 **2.** बौधायन धर्मसूत्र, 2.6.11.29 **3.** मनुस्मृति.3.80
4. तैत्तिरीय उपनिषत्, अनुवाक 11, शिक्षावल्ली प्रथम अध्याय. **5.** छान्दोग्य उपनिषत्, 8.15.1

*विशेष सचिव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, (अ.प्रा.) क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना-800002

समाप्ति पर्यन्त इस प्रकार बरतता हुआ (अन्त में) ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता।

इसमें पूरे जीवन की रूपरेखा या यात्रा का चित्र खिंचा गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम के समापन पश्चात् गृहस्थाश्रम प्रवेश का स्पष्ट संकेत हमें 'कुटुम्ब' शब्द से ध्वनित होता है। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में लिखा है "गुरुकुल्लान्निवृत्य न्यायतो दारानाहृत्य कुटुम्बे स्थित्वा गार्हस्थ्ये विहितकर्माणि तिष्ठन्नित्यर्थः।" अर्थात् गुरुकुल से निवृत्त हो नियमपूर्वक स्त्री परिग्रह कर कुटुम्ब में स्थित हो, अर्थात् गृहस्थाश्रम में विहित कर्म में तत्पर हो।

अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के कर्मान्त के पश्चात् द्वितीय चरण में गृहस्थाश्रम सनातन धर्म में विहित है। इस गृहस्थाश्रम सनातन धर्म में विहित है। इस गृहस्थाश्रम में विहित कर्त्तव्यों की झाँकि तैत्तिरीय संहिता के शीक्षावल्ली के ग्यारहवें अनुवाद में दिया गया है यहाँ पर शीर्षवार गृहस्थाश्रम में विहित कर्तव्यों का वर्णन करेंगे।

विवाह

महाभारत शान्ति पर्व में कहा गया है **न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृह मुच्यते।**[6] अर्थात् गृहिणी ही गृह है। गृहस्थाश्रम की धुरी गृहिणी अर्थात् भार्या है। शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय संहिता में गृहिणी अर्थात् पत्नी को पति की अर्द्धांगिनी कहा गया है, जिसके बिना पुरुष अपूर्ण ही होता है।

- **अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि सर्वो भवति।**[7]
- **अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी।** पुरुष का अर्द्धभाग पत्नी है।[8]

पुरुष गृहस्थाश्रम का आश्रय लेकर विवाह करे। गौतम धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र एवं मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख है।

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विन्देतानन्यपूर्वां यवीयसीम्।[9]

गृहस्थ अपने समान पहले वाग्दान द्वारा भी किसी को न दी गयी तथा अपने से कम आयु वाली कन्या से विवाह करें।

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टामिान्समासेन स्त्री विवहन्निबोधत।।[10]

मरने पर तथा इस लोक में चारो वर्णों के हिताहित (भला-बुरा) करने वाले स्त्रियों के आठ प्रकार के विवाहों की संक्षेप में सुनो।

ब्राह्मो दैवस्तथार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसच्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।[11]

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ अधम पैशाच है।

(1) ब्राह्म विवाह

ब्राह्मो विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृताम्।[12]

विद्या (वेद विद्या), उत्तम आचरणवाले, बन्धु, शील सम्पन्न वर को दो वस्त्रों से सजायी गयी तथा आभूषण से अलंकृत कन्या प्रदान करने पर ब्राह्म विवाह कहलाता है।

श्रुतिशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणेऽर्थिने कन्या दीयते स ब्राह्मः।[13]

श्रुति एवं शील युक्त ब्रह्मचारी याचक वर को कन्या दिया जाता है तो वह ब्राह्म विवाह कहलाता है।

6 महाभारत शान्तिपर्व.144.66
7 शतपथ ब्राह्मण, 5.2.1.10
8 तैत्तिरीय संहिता, 6.1.8.5
9 गौतम धर्मसूत्र, 4.1
10 मनुस्मृति, 3.20
11 मनुस्मृति, 3.21
12 गौतम धर्मसूत्र, 1.4.4
13 बौधायन धर्मसूत्र,1.11.20.2

ब्राह्मे विवाहे बन्धुशीललक्षणसम्पन्नश्रुतारोग्याणि बुद्ध्वा प्रजां सहत्व कर्मभ्यः प्रतिपादयेच्छक्तिविषयेणाऽलंकृत्य।[14]

ब्राह्म विवाह में वर के कुल, आचरण, धर्म में आस्था विद्या, स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर अपनी शक्ति के अनुसार कन्या को आभूषण से अलंकृत कर प्रजा की उत्पत्ति तथा एक साथ धर्म कर्म करने के प्रयोजन के कन्या प्रदान करें।

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः।[15]

वेद पढ़े हुए सदाचारी वर को स्वयं बुलाकर, उसकी पूजाकर और वस्त्रभूषाणदि से दोनों (कन्या-वर) को अलंकृत कर कन्यादान करना धर्मयुक्त ब्रह्म विवाह है।

हमने गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब एवं मनु के मतों को उपस्थापित किया है। इन चारो मतों सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वर पढ़ा लिखा विद्वान् हो, आचारवान् हो, शीलवान् हो। दोनों पक्षों के बीच कोई लेन देन नहीं हो। कन्या एवं वर वस्त्र एवं अलंकार के आच्छादित कर यह क्रिया सम्पन्न किया जाए। यह विवाह सर्वोत्तम कहलाता है।

(2) दैव विवाह

अन्तर्वेद्यृत्विजे दानं दैवोऽलंकृत्य।[16]

(यज्ञ के समय) वेदी पर (दक्षिणा के अवसर पर) यज्ञ कर्म कराने वाले ऋत्विज की आभूषण से अलंकृत करके कन्या प्रदान करने पर दैव विवाह कहलाता है।

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते।।[17]

ज्योतिष्टोमादि यज्ञ में विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋत्विज के लिए अंलकृत कन्या का दान करने को (मुनि लोग) धर्मयुक्त 'दैव' विवाह कहते हैं। यह विवाह अप्रचलित हो चला है। अतः अनुकरणीय नहीं है।

(3) प्राजापत्य विवाह

आच्छाद्याऽलंकृत्य 'एषा सहधर्म चर्यताम्' इति प्राजापत्यः।[18]

कन्या को वस्त्र के आच्छादित एवं अंलकार के आभूषित कर 'यह तुम्हारी भार्या है, इसके साथ धर्माचरण करो', ऐसा कहकर प्रदान किया जाता है तो वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है।

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्या प्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः।[19]

'तुम दोनों मिलकर धर्माचरण करो' ऐसा वचन कहकर तथा वस्त्रलंकारादि के पूजन कर कन्यादान करना 'प्राजापत्य' विवाह कहा गया है।

(4) आर्ष विवाह-

"पूर्वां लाजाहुतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते दत्त्वा ग्रहणमार्षः।"[20]
"आर्षे गोमिथुनं कन्यावते दधात्।" [21]

14 आपस्तम्बधर्म.सूत्र, 2.11.17
15 मनुस्मृति, 3. 27
16 गौतम धर्मसूत्र, 4.7
17 मनुस्मृति, 3.28
18 बौधायन धर्मसूत्र. 1.11.20.3
19 मनुस्मृति 2.30
20 बौधायन धर्मसूत्र, 1.11.20.4
21 तदेव,1.4.6

"आजकल वर पक्ष कन्या पक्ष से धन ग्रहण कर (दहेज लेकर) कन्या एवं वर का विवाह की अनुमति देते हैं। यह भी एक प्रकार का आसुर विवाह है। यह विवाह प्रशंसनीय नहीं है। आसुर, राक्षस एवं पैशाच विवाह निन्दनीय है इससे उत्पन्न सन्तान निन्दित कार्य में संलग्न पाये जाते हैं। इसलिए निन्दित विवाह का त्याग करना चाहिए।"

"एकं गोमिथनुं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।"

"कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते।"[22]

वर से एक गौ मिथुन (गाय और बैल का जोड़ा) अन्य दो गौ मिथुन (दो गाय एवं बैल का जोड़ा) लेकर विधिवत् कन्यादान करना आर्ष विवाह कहलाता है। यह अप्रचलित है।

(5) गान्धर्व विवाह-

"सकामेन सकामायां मिथस्संयोगो गान्धर्वः।"[23]

प्रेम करने वाला पुरुष का यदि प्रेम करनेवाली कन्या से संयोग हो तो वह गांधर्व विवाह कहलाता है।

इच्छायान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।

गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः।।[24]

कन्या एवं वर के इच्छानुसार परस्पर स्नेह से संयोग (आलिंगनादि) या मैथुन होना गांधर्व विवाह कहलाता है।

बौधायन ऋषि का मत है कि कुछ आचार्य सभी वर्णो के लिए गांधर्व विवाह की अनुमति देते हैं क्योंकि वह प्रेम के ऊपर आश्रित है।

"गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात्।" [25]

मन्तव्य- आजकल प्रायः गान्धर्व विवाह के दृष्टान्त दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

(6) आसुर विवाह-

धनेनोपेतोऽप्याऽऽसुरः।[26]

कन्यावाले को धन के संतुष्ट करके विवाह करना आसुर विवाह है।

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः।

कन्याऽऽप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते।[27]

कन्या के पिता या सम्बन्धियों को कन्या के लिए धन देकर स्वेच्छा से कन्या का ग्रहण वर द्वारा किया जाना आसुर विवाह कहलाता है।

(7) राक्षस विवाह-

प्रसह्याऽऽदानाद्राक्षसः।[28]

प्रसह्याऽऽदानाद्राक्षसः।[29]

बलपूर्वक कन्या का अपहरण कर विवाह करना राक्षस विवाह कहलाता है।

22 मनुस्मृति, 3.28
23 बौधायन धर्मसूत्र 1.11.20.6
24 मनुस्मृति, 3.32
25 बौधायन धर्मसूत्र, 1.11.20.16
26 बौधायन धर्मसूत्र, 1.12.20.7
27 मनुस्मृति, 3.31
28 बौधायन धर्मसूत्र
29 गौतम धर्मसूत्र. 1.4.10

(8) पैशाच विवाह-

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वोपयच्छेदिति पैशाचः।[30]

सोती हुई, नशीली वस्तु से माती हुई या प्रमत्त बनी हुई कन्या के साथ संगम पैशाच विवाह कहलाता है।

सुप्रां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः।[31]

जहाँ सोती हुई, (मदिरा) मतवाली अथवा असावधान कन्या के साथ एकान्त में संग किया जाता है वह विवाहों में पापिष्ठ आठवाँ पैशाची विवाह है। वस्तुतः राक्षस विवाह एवं पैशाच विवाह सभ्य समाज के लिए नहीं है। यह स्वीकार्य नहीं माना गया है।

आजकल वर पक्ष कन्या पक्ष से धन ग्रहण कर कन्या एवं वर का विवाह की अनुमति देते हैं। यह भी एक प्रकार का आसुर विवाह है। यह विवाह प्रशंसनीय नहीं है। आसुर, राक्षस एवं पैशाच विवाह निन्दनीय है इससे उत्पन्न सन्तान निन्दित कार्य में संलग्न पाये जाते हैं। इसलिए निन्दित विवाह का त्याग करना चाहिए।

अनिन्दितैः स्त्री विवहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता तृणां तस्मान्मिन्द्यान्विवर्जयेत्।।[32]

मन्तव्य

सनातन धर्म में विवाह का उद्देश्य धर्म की साधना है। सनातन धर्म का स्तम्भ गृहस्थ धर्म है जिसपर ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास टिका है। इतना ही नहीं, सच कहिए तो गृहस्थ ही धर्म का प्रतिनिधि है क्योंकि वही देव, पितर, ऋषि, मनुष्य एवं मनुषयेतर अनय प्राणियों की धारण पंच महायज्ञों के द्वारा करता है। 'धारणात् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजा' का कथन गृहस्थाश्रम में ही चरितार्थ होता है। गृहस्थाश्रम की धुरी पत्नी है जिसका उद्देश्य ही पति के साथ मिलकर धर्म का पालन। गृहस्थ काम प्रधान नहीं है प्रत्युत यह धर्म प्रधान है। काम धर्माधीन है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि-

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'[33]

धर्मानुकूल कामना हूँ। फलस्वरूप गृहस्थाश्रम में धर्मानुष्ठान हेतु पत्नी की आवश्यकता है एतदर्थ ब्राह्म या प्रजापत्य विवाह की उपयुक्त है। गंधर्व विवाह में प्रेम की प्रधानता है परन्तु सदा यह ध्यान रहना चाहिए कि दोनों का सम्बन्ध उन्मुक्त काम वासना की पूर्ति हेतु नहीं, प्रत्युत विश्व के कल्याण के लिए ही (लोक संग्रह) उनका पवित्र सम्बन्ध है।

सनातन धर्म एक साधना पद्धति है जिसमें हमें उसे एकत्व के मिलने की यात्र है। यह ध्यान सदा रहना चाहिए। तभी हम विवाह के उद्देश्य को समझ सकेंगे। अतः इस दृष्टिकोण से आसुर, राक्षस एवं पैशाच विवाह गहित है अनुकरणीय नहीं है।

दाम्पत्य धर्म

सनातन धर्म की धूरी गृहस्थाश्रम है। जिसका आधारभूत प्रशिक्षण ब्रह्मचर्याश्रम में दिया जाता है। ब्रह्मचर्य के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य जीवन में ब्रह्म की अनुभूति करना है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति। अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत के ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।[34] गृहस्थाश्रम में भी इस उद्देश्य को सदैव याद रखनी

30 बौधायन धर्मसूत्र
31 मनुस्मृति, 3.34
32 मनुस्मृति, 3.42
33 गीता, 7.11
34 छान्दोग्य उपनिषद्, 8.4.3

है। गृहस्थाश्रम रमण स्थल नहीं, प्रत्युत तपोस्थली है। पत्नी के साथ रहते हुए ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन। यह अद्भुत है। यह वही कर सकता है जो धीर है और जितेन्द्रिय है।

ब्रह्मचर्यव्रत समाप्ति के उपरान्त आचार्य अन्तेवासियों को उपदेश देते हैं- ''प्रजातन्तुं मा व्यवेत्छेत्सीः प्रजा तन्तु का विच्छेद मत कर अर्थात् प्रजा का विस्तार कर। इसके साथ यह भी उपदेश देते हैं- ''धर्मं चर'' अर्थात् धर्म का अनुपालन कर। इसके अतिरिक्त और कतिपय उपदेश हैं जिनका अनुपालन पति-पत्नी को साथ में मिलकर करना है। गृहस्थाश्रममय शकट के दो चक्के हैं- पति और पत्नी। हमने विवाह के प्रसंग में देखा है कि वर को कन्या धर्म पालन के लिए प्रजापत्य एवं ब्रह्म विवाह में दिया जाता है। यही हमारे विवाह की विशिष्टता हैं अन्य धर्मों में विवाह एक संविदा है, परन्तु सनातन धर्मो में विवाह धर्मपालन के लिए है, उन्मुक्त कामवासना की पूर्ति हेतु नहीं।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 85 वें सूक्त में कहा गया है, यह कला गार्हपत्य धर्म के अनुपालन के लिए देवता द्वारा प्रदान की जाती है-

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वामदुर्गार्हपत्याय देवा।।[35]

हे वधू! मैं तुम्हारे सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकड़ रहा हूँ। तुम मुझे पति के रूप में स्वीकार कर मेरे साथ ही वृद्धावस्था प्राप्त करोगी, अर्थात् हमलोग वृद्धावस्था तक एक साथ इसी तरह से रहेंगे। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि (पूषा)- ये सब देवगण गृहस्थाश्रम चालने के लिए तुम्हें मुझे सौंप रहे हैं।

विवाह काल में वर-वधू प्रार्थना करते है।

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।[36]

समस्त देवता हम दोनों (वर-वधू) के मनों को भली प्रकार मिला दे। अर्थात् (हमदोनों) के दुःख आदि कष्टों को दूर कर (हमदोनों को) लौकिक एवं वैदिक विषयों में प्रकाश युक्त करें। आप देवी हम दोनों के हृदयों को मिला दें तथा वायु हमदोनों के हृदय को मिला दे अर्थात् हम दोनों की बुद्धियों को परस्पर अनुकूल करें और भगवान् ब्रह्मा हम दोनों को संयुक्त करें। फल देनेवाली सरस्वती हमदोनों को परस्पर संयुक्त करे।

वर-वधू पुनः प्रार्थना करते हैं-

इहैव स्तं मा वि योष्टं विश्रमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।।[37]

हम दोनों एक साथ यहीं इस लोक में रहें, हमलोग कभी अलग नहीं और इसी तरह से पुरी आयु का उपभोग करें। हमलोग घर में नाती-पोतों के बीच सुखपूर्वक रहें।

अतः गार्हपत्य धर्म का निर्वाह पति और पत्नी को मिलकर करना है। धर्म निर्वहन में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, स्वतंत्र नहीं। अतः गौतम ऋषि ने कहा- अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री।[38] पत्नी उद्दाम काम वासना की पूर्ति हेतु साधन नहीं है, प्रत्युत वह धर्मचारिणी है 'सहधर्मिणी है। वह कंधे से कंधे मिलाकर गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों का सम्पादन करती है। पत्नी पति को को देवता रूप में और पति पत्नी को देवी के रूप में समझे।[39] दोनों का मन समान हो, दोनों की बुद्धि समान हो, दोनों का ध्येय समान हो एसी आर्ष प्रार्थना है।

35 ऋग्वेद, 10.85.36 36 ऋग्वेद, 10.85.47 37 ऋग्वेद, 10.85.42
38 (गौतम धर्मसूत्र, 2.8.1) 39 द्रष्टव्य. भागवत. 7.11.28, एवं मनुस्मृति.3.26

अथर्ववेद में उल्लेख है-

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि योष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् व समनस्कृणोमि।[40]

आप (दोनो) छोटे-बड़ों का ध्यान रखकर व्यवहार करते हुए समान विचार रखते हुए तथा समान कार्य करते हुए पृथक् न हो। आप एक दूसरे के प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए आओ। हे मनुष्यों! मैं भी आपको एक कार्यों में प्रवृत्त होनेवाले करता हूँ।

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।

एष धर्मः सनासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः।[41]

मरण पर्यन्त पति पत्नी में परस्पर किसी भी प्रकार के धर्म का उल्लंघन और विच्छेद न हो पाये। संक्षेप में स्त्री-पुरुष का सर्वप्रमुख मुख्य धर्म है।

अतुव्रतः पितुः पुत्रे मात्र भवतु संमनाः।

जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्ति वाम्।[42]

पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करनेवाला हो, माता पुत्र आदि के साथ एक के मन वाली हो, भार्या पति से मधुरता भरी सुखदायिकी बाणी बोले।

अथर्ववेद का तीसरे काण्ड का 30वाँ सूक्त सामनस्य सूक्त कहलाता है। ये हरेक प्राणी के लिए अनुशासनीय है। अतः दम्पती के लिए तो और आवश्यक है। दम्पती के बीच **अन्यो अन्यमभिहर्यन्त वत्सं जातमिवाघ्न्या।**[43]

जैसे उत्पन्न हुए बछड़े के गाय स्नेह करती है उसी प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे की कामना करें या प्रेम करें।

यदा भर्ता च भार्या च परस्परवशानुगौ।

तथा धमार्थकामानां त्रयणामपि संगतम्।।[44]

जब भर्ता और भार्या परस्पर अनुगामी होते हैं तब वहाँ धर्म, अर्थ एवं काम की सम्यक् प्राप्ति होती है।

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।[45]

जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और उसी प्रकार पति से पत्नी प्रसन्न रहती है वहाँ निश्चय करके अचल कल्याण होता है।

नास्ति भार्या समो बन्धुर्नास्ति भार्या समा गतिः।

नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे।

यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी।

अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहं।।[46]

संसार में भार्या के समान कोई बन्धु नहीं है, स्त्री के समान कोई आश्रय नहीं है और भार्या के समान धर्म संग्रह में सहायक भी दूसरा कोई नहीं है।

जिसके घर में साध्वी और प्रिय वचन बोलने वाली भार्या नहीं है, उसे तो वन में चले जाना चाहिए, क्योंकि उसके लिए जैसा घर है, वैसा ही वन।

40 अथर्ववेद, 3.30.5
41 मनुस्मृति, 8.101
42 अथर्ववेद. 3.30.2
43 अथर्ववेद, 3.30.1
44 मनुस्मृति
45 मनुस्मृति 3.60
46 महाभारत, शान्तिपर्व. 144.16, 17

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहणीहीनमरण्यसदृशं मतम्।।[47]
नास्ति भर्तृसमो नाथो नास्ति भर्तृसमं सुखम्।
विसृज्य धनसर्वस्वं भर्ता वै शरणं स्त्रियाः।।[48]

स्त्री के लिए पति के समान कोई रक्षक नहीं है और पति के तुल्य कोई सुख नहीं है। उसके लिए तो धन और सर्वस्व को त्याग कर पति ही एकमात्र गति है।

उपर्युक्त वेद, महाभारत और मनु के उद्धारणों से स्पष्ट हो जाता है कि गृहस्थाश्रम में दम्पति एक दूसरे के लिए समर्पित होते हैं। दो प्राण परन्तु एक मन होता है। लक्ष्य होता धर्म की सिद्धि। धर्म एक साधन है। धर्मानुसरण से चित्त की शुद्धि होती है तथा तब मोक्ष हस्तामलकवत होता है।

दम्पती के लिए नियम

ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जनम्। [49]

ऋतुकाल में पत्नी का संग करे अथवा निषिद्ध तिथियों (पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी, अष्टमी तथा प्रथम चार रात्रि) को छोड़कर सदा ही पत्नी का संग करे।

यदि अपने पर संयम कर सके और दोनों में समांजस्य हो तो -

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया।[50]

अपनी स्त्री में अनुरक्त पुरुष को चाहिए कि ऋतुकाल में अवश्य उसके साथ गमन करें और उसी के पास रति की इच्छा से पर्व दिन छोड़कर जाए।

ऋतुकाल का वर्णन

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः।।[51]

स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतु काल सोलह रात्रि का है। उनमें से प्रथम की चार रात्रियाँ अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेके चार दिन निन्दित है।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः।।[52]

उसमें आद्य चार रात्रियाँ, ग्याहरवीं एवं तेरहवीं रात्रियां निन्दित है तथा शेष दश रात्रियाँ प्रशस्त हैं।

युग्मासु पुत्र जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेतदतिवे स्त्रियम्।

युग्म रात्रियाँ (अर्थात् छठी, आठवीं, 3-48 दशमी, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं) में संगम करने से पुत्र उत्पन्न होते हैं तथा अयुग्म रात्रियों (पाँचवी, सातवी, नवमी एवं पन्द्रहवीं) में संगम करने के पुत्री उत्पन्न होती है। अतः पुत्र की इच्छा वाले पुरुष को ऋतुकाल में समरात्रियों में समागम करना चाहिए।

47 महाभारत, शान्तिपर्व, 144.6 | 48 महाभारत, शान्तिपर्व, 148.7 | 49 गौतम धर्मसूत्र 1.5.1, 2
50 मनुस्मृति, 3.45 | 51 मनुस्मृति, 3.46 | 52 मनुस्मृति, 3.47

षोडशतुं निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत्
ब्रह्मचर्येव पर्वान्याद्याचतस्तुग्वर्जयेत्।।[53]

स्त्रियों की सोलह ऋतु बाल की रात्रियाँ होती है। उस ऋतु काल में युग्म रात्रियों में उनके पास जाना चाहिए। इस प्रकार समागम करने वाला ब्रह्मचारी ही होता है। किन्तु पर्वकाल (अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी) तथा प्रथम चार रात्रियों को वर्जित करे।

यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्।
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः।।[54]
यादृशं भजते स्त्री सुतं सुते तथाविद्यम्
तस्मात्प्रजा विशुद्धयर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः।।[55]

स्त्री जैसे पति का सेवन करती है उसी प्रकार की सन्तान को उत्पन्न करती है। इसलिए सन्तान की शुद्धि के लिए प्रयत्न पूर्वक स्त्री की कुसंग के रक्षा करें।

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैकपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्।।[56]

कोई भी व्यक्ति जबरदस्ती या दबाव के साथ स्त्रियों को कुसंग के रक्षा नहीं कर सकता किन्तु इसलिए आगे कहे गये उपायों से उनकी रक्षा की जा सकती है।

यह उपाय- 8.11 में वर्णित है, जो उपर में लिखे जा चुके हैं।

स्त्रियाँ परिवार में आदरणीय है। वह गुलाम नहीं प्रत्युत गृहस्वामिनी होती है।

भर्तृ-पितृ-ज्ञाति-श्वश्रू-श्वशुर-देवरैः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।।[57]

स्त्री पति, भाई, पिता, जाति, सास, श्वसुर, देवर तथा बान्धवों द्वारा आभूषण वस्त्र तथा भोजन द्वारा पूजनीय है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[58]

जिस परिवार में नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। जहाँ नारियों का सम्मान नहीं होता वहाँ सारी क्रियाऐं निष्फल होती है।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यमैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।[59]

जिस कुल में स्त्रियाँ (अपने पति के दुराचरण से शोकातुर रहती है या अन्य सदस्यों के कारण शोकातुर रहती है वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जिस कुल में ऐसा नहीं है, वहाँ सदैव वृद्धि होती है।

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः।।[60]

जिस घर में अप्रतिपूजित होने के कारण स्त्रियाँ शाप देती है वह कुल/परिवार दूसरे के द्वारा किये गये अभिचार कर्म से आहत की तरह नष्ट हो जाता है।

53 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.69
54 मनुस्मृति, 1.81
55 मनुस्मृति, 8.08
56 मनुस्मृति, 9.10.
57 याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.82; मनुस्मृति, 3.55
58 मनुस्मृति, 3.56
59 मनुस्मृति, 3.57
60 मनुस्मृति, 3.58

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैनरैर्नित्य सत्कारेषुत्सवेषु च।।[61]
प्रजनार्थं स्त्रियाः सृष्टाः सन्तानार्थ च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः।।[62]

गर्भ धारण करके सन्तान की उत्पत्ति करने के लिए स्त्रियों की सृष्टि हुई है और सन्तानार्थ गर्भाधान करने के लिए पुरुष की सृष्टि हुई है। इसलिए वेदों में साधारण धर्म कार्य के अनुष्ठान से भी पत्नी के साथ करने का विधान है।

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिन्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्री-पुंसयोर्मतः परः।।[63]

मरण पर्यन्त पति-पत्नी में परस्पर किसी भी प्रकार के धर्म का उल्लंघन और विच्छेदन न हो पाये। संक्षेप में स्त्री पुरुष का यही सारअप (श्रेष्ठ मुख्य धर्म है)

तथा नित्यं यते यातां स्त्रीपुंसां तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरतेतां तौ वियुक्तावितरेतरम्।।[64]

विवाहित स्त्री पुरुष सदा ऐसा यत्न करे कि जिस किसी भी प्रकार वे एक दूसरे से अलग न होवे।

नोपागच्छेत्प्रमत्तेऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह।।[65]
रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्यपगच्छतः।
प्रज्ञा तेजो बलं चायुरायुश्चैव प्रहीयते।।[66]
तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम्।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते।।[67]

कामार्त्त हो तो भी राजस्वला होने पर अपनी स्त्री के पास न जाए और उसके साथ एक बिछौने पर न सोवे।।40।। जो कोई पुरुष रजस्वला स्त्री के पास जाता है उसके बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु ये घटते हैं।।41।। जो कोई पुरुष रजस्वला स्त्री के पास नहीं जाता है उसके बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु (ये सब) बढ़ते हैं।

अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा संध्योपासन मेव च।
कार्य पत्न्या(सह)प्रतिदिनं बलिकर्म च नैत्यकम्।[68]

अग्निहोत्र, बड़ों की शुश्रूषा, संध्या, बलिकर्म प्रतिदिन पत्नी के साथ करें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सनातन धर्म में गृहस्थ आश्रम सबसे महत्त्वपूर्ण है। इस आश्रम में पति-पत्नी के अधिकारों और कर्तव्यों का भलीभाँति विवेचन हुआ है। पति-पत्नी दोनों परिवार की धुरी हैं। एक-दूसरे के साथ सामंजस्य करते हुए सुखपूर्वक प्रजा की सृष्टि करना उनका कर्तव्य होता है। नारियाँ किसी भी प्रकार से हीन स्थिति में नहीं हैं। वह अपने घर की सम्राज्ञी होतीं हैं।

***

61 मनुस्मृति, 3.59
62 मनुस्मृति, 8.86
63 मनुस्मृति, 8.101
64 मनुस्मृति, 8.102
65 मनुस्मृति, 4.40
66 मनुस्मृति, 4.41
67 मनुस्मृति, 4.42
68 स्मृति.रत्नाकर में उद्धृत मनु के वचन

अध्यात्म-रामायण से

रामकथा

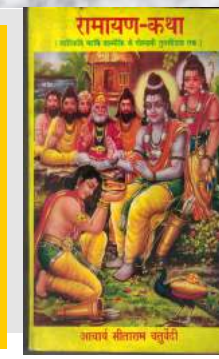

(अंक संख्या 101 से आगे)

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढ़ाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

- प्रधान सम्पादक

गतांक से आगे

रावणके मारे जानेपर मन्दोदरी आदि स्त्रियाँ भी रावणके शवके पास आकर विलाप करने लगीं; यहाँतक विभीषण भी उन्हें देखकर अपने आँसू न रोक पाए। रामके आदेशसे लक्ष्मणने विभीषणको तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर समझाया और कहा कि अपने भाईका विधिवत् अन्त्येष्टि संस्कार कर डालो और इन स्त्रियों को लंकापुरीमें भेज दो। यह सुनकर विभीषणने रामसे कहा कि रावण बड़ा दुष्ट और क्रूर था। उसका संस्कार मैं कैसे कर सकता हूँ ? यह सुनकर रामने विभीषणसे कहादेखो, वैर तो मरनेतक रहता है। अब हमारा काम हो चुका। इसलिये अब तो यह जैसा तुम्हारा (भाई) है, वैसा ही मेरा भी है। अतः, इसका संस्कार कर डालो

मरणान्तानि वैराणि निवत्तं नः प्रयोजनम्।

क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

तब विभीषणने रामकी आज्ञासे मन्दोदरी आदिको बड़ा ढाढ़स बंधाया और रावणके सब अन्त्येष्टि संस्कार कर डाले। सब राक्षसियोंके चले जानेपर भगवान् रामके पास बड़े विनीत भावसे विभीषण आ खड़े हुए। मातलि भी रामकी परिक्रमा करके इन्द्रका रथ लेकर स्वर्गलोक चला गया। यह सब हो चुकनेपर रामने लक्ष्मणसे कहा कि यों तो मैंने पहले ही विभीषणको लंकाका राज्य दे दिया है तथापि तुम इसी समय लंकामें जाकर विभीषणका विधिवत् अभिषेक कर आओ। लक्ष्मण तुरन्त वानरोंको साथ लेकर लंकापुरीमें जाकर विभीषणका अभिषेक कर आए। सबके आ जानेपर रामने हनुमानसे कहा कि तुम विभीषणको सम्मत्तिसे रावणके भवन में जाकर सीताको रावणके वध आदिका वृत्तान्त सुना आओ, फिर वे जो कुछ उत्तर दें मुझे आ सुनाना।

हनुमानने रावणके भवन में शिशपा वक्षके नीचे रामका ध्यान किए बैठी हई सीताको प्रणाम करके रावणकी मत्युका समाचार कह सुनाया। यह प्रिय सन्देश

सुनकर जानकीने कहा कि मैं तुम्हें क्या पुरस्कार दूं क्योंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें उपहार में दी जा सके। हनुमानने कहा कि मैं श्रीरामका सदा दर्शन करता रहता हूँ, यही मेरे लिये सबसे बड़ा पुरस्कार है। तब जानकीने हनुमान्‌से कहा - मैं रघुनाथजीके दर्शन करना चाहती हूँ, उसकी शीघ्र ही मुझे आज्ञा मिले।

हनुमान् से यह समाचार पाकर रामने विभीषणसे कहा कि तुम जानकीको स्नान कराकर, शुद्ध निर्मल वस्त्र पहनाकर, सारे आभूषणोंसे सुसज्जित करके यहाँ लिवाते लाओ। सीताजीका पूर्ण शृङ्गार करके, विभीषण उन्हें पालकी में बैठाकर लिवा ले चले। जब वानर उन्हें देखने के लिये लपके, तब छड़ीदारोंने उन्हें हटो-बचो कहकर रोक दिया। यह देखकर रामने विभीषणसे कहा कि सीताको पैदल ही चलकर आने दो, जिससे सब उनके दर्शन कर सकें। सीताके आनेपर रामने उन माया-सीताको बहुत-सी न कहने योग्य बातेंतक कह डालीं

रामोऽपि दृष्ट्वा तां मायासीतां कार्यार्थनिर्मिताम्।

अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघुनन्दनः॥

यह सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा— भगवान् रामके विश्वासके लिये और लोगोंको निश्चय करानेके लिये तुम शीघ्र ही अग्नि प्रज्वलित कर दो। कहने-भरकी देर थी। लक्ष्मणने तत्काल अग्नि प्रज्वलित कर जगाई। सीताने रामकी परिक्रमा करके अग्निसे हाथ जोड़कर कहा – 'यदि मेरा हृदय श्रीरघुनाथजीको छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं जाता हो तो समस्त लोकोंके साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।' यह कहकर सीता उस प्रज्वलित अग्नि में जा खड़ी हुई। यह देखकर तो सब लोग व्याकुल होकर कहने लगे कि रामने अपनी लक्ष्मी- सदृश सीताजीको इस प्रकार कैसे कह दिया। अग्निदेव और देवताओंके आ कहनेसे रामने सीताको स्वीकार कर लिया।

उसी समय सब देवता, पितृगण, ऋषि, मुनि, सिद्ध आदि भी आ-आकर रामकी स्तुति करने लगे। शंकरने आकाशसे ही कहा कि मैं तो आपसे राज्याभिषेकके समय अयोध्यापुरीमें ही मिलूँगा। इस समय आप अपने पिता दशरथका दर्शन कर लीजिए। राम और लक्ष्मणने जब दशरथको प्रणाम किया तब दशरथने उन्हें हृदयसे लगाकर कहा-बेटो! तुमने मुझे संसाररूपी दुःख-समुद्रसे पार कर दिया।

तब रामने इन्द्रसे कहा कि आप अमृत बरसाकर इन वानरोंको तुरन्त जीवित कर दीजिए। अमृत बरसाते ही रामकी सेनाके मरे हुए वानर तो जीवित हो उठे, किन्तु राक्षस मरे ही पड़े रह गए। विभीषणने रामसे प्रार्थना की कि आप सीता-सहित मंगल स्नान कर लीजिए, फिर कल भाई लक्ष्मणके सहित वस्त्राभषणोंसे सज्जित होकर हम सब भी आपके ही साथ चले चलेंगे। विभीषणके वचन सुनकर रामने कहा - 'देखो, भरत मेरी बाट देख रहा होगा। उससे विना मिले मैं

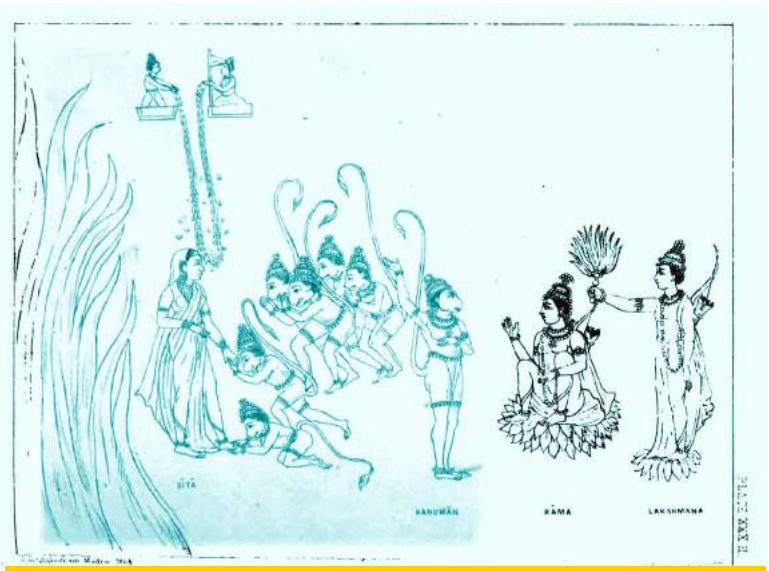

द हिन्दू पैंथन, एडबर्ड मूर, (चित्र सहित नवीन संस्करण) डब्ल्यू.पी. सिम्पसन, 1864 ई. में प्रकाशित।

द हिन्दू पैंथन, एडबर्ड मूर, (चित्र सहित नवीन संस्करण) डब्ल्यू.पी. सिम्पसन, 1864ई. में प्रकाशित

स्नान अथवा वस्त्राभूषण-धारण कैसे कर सकता हूँ? अतः, तुम केवल सुग्रीव आदि वानरोंका ही सत्कार कर डालो।'

विभीषणने सब वानरोंका उनकी रुचि और इच्छाके अनुसार भरपूर सत्कार कर दिया और रामने सबकी बड़ाई करके उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। तब विभीषणके लाए हुए पुष्पक विमानपर जानकी और भाई लक्ष्मणके साथ चढ़कर उन्होंने सुग्रीव, अंगद, विभीषण आदिसे कहा कि आप लोग मित्रका पूरा धर्म निभा चुके हैं, अब आप लोग भी अपने-अपने इच्छित स्थानोंको चले जा सकते हैं और मैं भी अपने पिताकी राजधानी अयोध्याको चला जाना चाहता हूँ। इसपर सब कह उठे कि हम भी आपके साथ अयोध्या चलकर, आपका राज्याभिषेक देखकर तथा माता कौशल्याकी वन्दना करके ही लौटना चाहते हैं। यह सुनकर रामने सबको विमानपर बुला चढ़ाया और वह पुष्पक विमान सबको लिए-दिए आकाशमें उड़ चला --

तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौवेरं परमासनम्।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसा ॥

विमानपर चढ़े हुए राम अपनी धर्मपत्नीको सब स्थान दिखाते हुए किष्किन्धा जा पहुँचे। वहाँ रामकी आज्ञासे सुग्रीवने तारा आदि स्त्रियोंको भी विमानपर बुला बैठाया। सीताको सब स्थान दिखाते हुए राम प्रयाग पहुंच गए और दूरसे अयोध्या दिखाकर सीतासे बोले - लो, प्रणाम कर लो। यह सब दिखाकर राम उतरकर भरद्वाज मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे।

चौदहवें वर्षकी पंचमीको उन्होंने भरद्वाज ऋषिको प्रणाम जा किया और उनसे भरत, शत्रुघ्न, अयोध्या और अपनी

माताओंका कुशल-मंगल पूछ लिया। भरद्वाजने सबका कुशल बताकर भरतकी तपस्याका सारा विवरण सूनाकर कहा-आप आज तो सेनासहित यहीं ठहरकर भोजन करके मेरा घर पवित्र कीजिए, कल अपनी राजधानी जाइएगा। यह सुनकर वे अपनी सेना और सीता-लक्ष्मण सहित वहीं ठहर गए।

वहाँ रामने हनुमानसे कहा कि तुम अयोध्या जाकर देख आओ कि राज-भवन में सब कुशल तो है न ! शृङ्गवेरपुर में मेरे मित्र गुहसे मिलकर उन्हें जानकी-लक्ष्मण-सहित मेरे आनेकी सूचना दे देना फिर नन्दिग्राममें जाकर भरतसे मेरा कुशल सुनाकर और लंकाकी सारी घटनाएँ बताकर कह देना कि मैं शीघ्र ही वानरोंके साथ आ ही पहुँच रहा हूँ। उसे सुनकर भरतकी जो चेष्टा हो वह देखकर तुरन्त मेरे पास लौट आना। हनुमान तत्काल गुहसे मिलकर भरतके पास जा पहुँचे और उन्होंने सब समाचार उन्हें कह सुनाया। यह सुनकर भरत हर्षसे मूच्छित हो गिरे और फिर हनुमानको गलेसे लगाकर बोले-यह समाचार सुनानेके लिये मैं तुम्हें एक लाख गौएँ, सौ गाँव और परम सुन्दरी सोलह कन्याएँ दिए देता हूँ। अब केवल यह भर बता दो कि रामका वानरोंके साथ समागम कैसे हो गया? हनुमानने सुग्रीवसे मित्रता होनेकी सारी कथा भरतको कह सुनाई।

अयोध्या रामका आगमन भरतने शत्रुघ्नको आज्ञा दी-जाओ, कह दो, रामका दर्शन करनेके लिये सब लोग चले चलें। अयोध्यापुरी सजा दी गई और भरत अपने सिरपर भगवान्की पादुकाएँ रखकर पैदल ही चल पड़े। उसी समय दूरसे ही पुष्पक विमान भी आता दिखाई दे गया। उसे देखना था कि सब लोग हर्षसे चिल्ला उठे। रामकी आज्ञासे जब विमान धरतीपर उतर आया तब रामने भरत और शत्रुघ्नको भी विमानपर चढ़ा बैठाया। जब रामको भरत प्रणाम करने लगे तब रामने उन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया। फिर भरतने लक्ष्मणसे मिलकर सीताको प्रणाम किया और रामके साथ आए हुए सुग्रीव आदिको गलेसे लगाकर सुग्रीवसे कहा कि तुम्हारी ही सहायतासे रामकी विजय हो पायी है, इसलिये तुम अबसे हमारे पाँचवें भाई हो गए हो। फिर शत्रुघ्नने भी राम-लक्ष्मण और सीताको तथा रामने अपनी माता कौशल्या, कैकेयी और सुमित्राको जा प्रणाम किया। तभी भरतने रामकी पादुकाएँ रामके चरणोंमें ला पहनाईं और कहा- लीजिए, आपकी धरोहर आपको ही सौंपे दे डाल रहा हूँ। भरतको गोदमें लिए हुए राम उसी विमानपर चढ़कर भरतके आश्रममें चले गए और वहाँ पुष्पक विमानसे उतरकर विमानको कुबेरके पास भेज दिया।

रामका राज्याभिषेक भरतकी प्रार्थनापर रामने भरतसे राज्य लेना स्वीकार कर लिया। भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषणके स्नान कर चुकनेपर रामने भी जटाजूट कटवाकर स्नान कर लिया। लक्ष्मण और भरतने तो उन्हें विभूषित किया तथा राज-महिलाओंने सीताका शृङ्गार कर दिया। तब सब लोग रथपर चढ़कर अयोध्यापुरीको चल दिए। राजमहल में जाकर रामने अपने साथ आए हुए सुग्रीव आदि सबके ठहरनेकी बड़ी उत्तम व्यवस्था कर दी। यह हो चुकनेपर वशिष्ठ आदि महर्षियोंने विधिपूर्वक रामका अभिषेक कर दिया।

राज्याभिषेक हो जानेपर रामने सबको यथायोग्य बहुत-सा दान दिया और भुजबन्द दिए। उन्होंने एक बहुमूल्य हार जानकीको देकर कहा कि तुम जिसे चाहो उसे यह हार दे डालो। सीताने वह हार लेकर हनुमानको दे दिया जिसे पहनकर हनुमान गौरवान्वित हो उठे। तब रामने हनुमानसे कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर माँग लो। हनुमानने कहा-मैं यही चाहता हूँ कि निरन्तर आपका नाम स्मरण करता हुआ पृथ्वीपर बना रहूँ और जबतक संसार में आपका नाम रहे तबतक मेरा शरीर भी बना रहे। सीताने भी कहा कि तुम जहाँ कहीं रहोगे वहाँ सारे भोग तुम्हारे पास स्वयं ही आ उपस्थित होंगे। वे रामको वार-बार प्रणाम करके तपस्या करने के लिये हिमालयपर चले गए। तब रामने गुहको भी बिदा करके लक्ष्मणको युवराज पदपर अभिषिक्त कर दिया।

रामके राज्य में न कोई स्त्री विधवा होती थी, न कहीं सों, व्याधियों और लुटेरोंका भय था, न कोई अनर्थ होता था और न बालकोंकी मृत्यु होती थी। वहाँ उचित समयपर मेघ जल बरसाते थे, प्रजा अपना धर्म पालन करती तथा वर्णाश्रमोंके गुणोंसे युक्त थी। इस प्रकार पुत्रोंके समान प्रजाका पालन करते हुए रामने दस सहस्र वर्षांतक राज्य किया।

॥ युद्धकाण्ड पूर्ण ॥

विद्या और विवेक में अन्तर

डॉ. राजनीति झा*

विद्या को विवाद-मूलक कहा गया है- विद्या विवादाय धनं मदाय इत्यादि। अतः पुस्तकों की पढ़ी हुई विद्या तब तक विमुक्ति नहीं प्रदान कर सकती है, जबतक कि उस व्यक्ति में विवेक न आये। अतः वहीं विद्या श्रेयस्कर है जो विवेक से युक्त हो, क्योंकि वहीं विद्या विद्या होती है- सा विद्या या विमुक्तये। लेखक ने यहाँ विद्या एवं विवेक के सूक्ष्म अन्तर को महाभारत, पंचतन्त्र एवं अन्य भारतीय वाङ्मय के उद्धरणों से समझाने का प्रयत्न किया है।

*पूर्व सहसंपादक, 'धर्मायण'

विद्या और बुद्धि या विवेक के सूक्ष्म अन्तर को बतानेवाली एक उत्तम कथा पंचतंत्र के पाँचवें तन्त्र में इस प्रकार है- किसी नगर में चार ब्राह्मण पुत्र निवास करते थे। उनमें से तीन शास्त्रज्ञ विद्वान्, मगर एक अनपढ़ था। एकबार तीनों शास्त्रज्ञों ने किसी राजा के दरबार में जाकर अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने का निश्चय किया ताकि राजा से वे उपहार प्राप्त कर सकें। उनमें से सबसे बड़े ने कहा कि अनपढ़ भाई को राजा के दरबार में ले जाने से कोई लाभ नहीं उलटे वह बिना कुछ किए उपहारों का हिस्सेदार बन जायगा, इसलिए उसे साथ ले जाना बेकार है। दूसरे भाई ने उसका समर्थन किया पर तीसरे भाई ने इस विचार से अपनी असहमति जताई और उसको भी साथ ले चलने पर अड़ गया। निदान उसे भी साथ ले लिया गया।

रास्ते में एक जंगल था, जिसमें कुछ हड्डियाँ बिखड़ी पड़ी दिखी जो किसी पशु की थी। उन लोगों ने मृत जीव को जीवित करने की विद्या पढ़ी थी। इसलिए उनके मन में विचार आया कि क्यों न इन हड्डियों को इकट्ठा कर उसपर अपनी विद्या की परीक्षा ली जाय। यह सोचकर एक भाई ने उन हड्डियों को इकट्ठा कर उसका ढ़ाँचा तैयार किया। दूसरे ने अपनी विद्या के बल पर उसमें रक्त, मांस और चर्म का सृजन किया। पर जब तीसरे ने अपनी विद्या आजमाने के लिए जीवनदायिनी विद्या का प्रयोग करना चाहा तो चौथे भाई ने जो अनपढ़ था उसे रोकते हुए कहा कि यह ढ़ाँचा सिंह का है इसलिए यदि इसमें जान डालोगे तो यह जीवित होकर हम चारों भाई को खा जायगा। इसलिए इसे जीवित मत करो। पर तीसरा भाई अपनी बात पर यह कहते हुए अड़ा रहा कि तब तो मेरी विद्या अपरीक्षित ही रह जायगी। किसी दूसरे भाई ने भी उसे मना नहीं किया। इसपर छोटे भाई ने, जो अनपढ़ था, उससे थोड़ी देर रूक जाने का आग्रह किया और खुद पेड़ पर जा चढ़ा। फिर वही हुआ जो होना था। प्राणवान् होते ही सिंह ने उन तीनों को अपना भक्ष्य बना लिया। केवल वही भाई बचा रह गया जो था तो अनपढ़ मगर विवेकवान् था, जिसमें व्यवहारिक बुद्धि थी। किसी के लिए भी लिखी गई यह सिंहकारक कथा विद्या और बुद्धि या विवेक के सूक्ष्म अन्तर को बड़ी सहजता से प्रकट करती है।

वस्तुतः पुस्तकीय ज्ञान में कोई कितना भी सम्पन्न क्यों न हो लेकिन यदि उसमें व्यवहारिक ज्ञान नहीं पैदा हुआ तो वह मूर्ख की तरह उपहासास्पद ही है। यह व्यवहारिक ज्ञान चिंतन और व्यक्तिगत अनुभव से प्राप्त होता है। विद्या उसकी मात्र सहायिका है। कहा भी है कि शास्त्रें में कुशल होने पर भी व्यवहारिक ज्ञान या बुद्धि-विवेक से रहित व्यक्ति उसी प्रकार उपहास का पात्र होता है जिस प्रकार बेशकीमती वस्त्रें और आभूषणों से सुसज्जित मूर्ख व्यक्ति (अपने गँवारूपन के कारण) उपहास का पात्र होता है।

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिता।
सर्वे ते हास्यता यान्ति यथा मूर्खाः सुशोभिता।।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुद्धि विद्या से बड़ी होती है। विद्या से बुद्धि श्रेष्ठ है यह अनुभवी लोगों का सर्वसम्मत निर्णय है। जिसको बुद्धि है वही बलवान् है निबुर्द्धि को बल कहाँ? ''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलः'' बुद्धिहीनों की हीनावस्था सुनिश्चित है, क्योंकि सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान से दुनिया में काम नहीं चलता, पग-पग पर विवेक की जरूरत होती है। जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को दूर करने में केवल सूर्य ही समर्थ होता है उसी प्रकार मनुष्यों की विपत्ति को दूर करने में केवल उसका विवेक ही सक्षम होता है।

विवेकः व्यसनं चैव पुंसां क्षपयितुं क्षमः।
अपहर्तुं समर्थो{सौ रविरेव निशातमः।।

असल चीज तो विवेक है जिसके बिना विद्या कभी संकट में भी डाल सकती है। विवेकहीन विद्वान् तो वस्तुतः पठित मूर्ख होता है- पढ़ा हुआ तोता, जो केवल रटी हुई बात दुहरा सकता है।

इन्हीं कारणों से महाभारत में भी बुद्धि को धर्म कहा है-

हे राजन! देवाधिदेव परमेष्ठी ब्रह्म ने, अहिंसा, सत्य, अक्रोध (प्रेम) तपस्या (विवेकपूर्ण शुभ श्रम) दान (त्याग वृत्ति) दम (मन एवं इन्द्रियों का संयम) मति (बुद्धि, ज्ञान, विवेक व्यवहारिक बुद्धि) अनसूया (किसी के दोष न देखना) अमात्सर्य (किसी से डाह न करना) अनीर्ष्या (जलन का अभाव) और शील (नैतिक एवं विनम्रतापूर्ण आचार-व्यवहार) को धर्म कहा है।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्तपो दानं दमो मतिः।
अनसूयाव्यमात्सर्यमनीर्ष्या शील मेव च।
एष धर्मः कुरूश्रेष्ठ कथितः परमेष्ठिना।। (शान्ति पर्व- 108/12)

यही बात मनुस्मृति के अधोलिखित श्लोक से भी ध्वनित होती है कि धर्म के शुद्ध स्वरूप को जानने की इच्छा रखनेवाले को प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान और विविध शास्त्रें का ज्ञान चाहिए।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्म शुद्धिमभीप्सता।। (12/105)

प्रत्यक्ष प्रमाण का अर्थ है वह जो इन चर्मचक्षुओं से देखा जा सके। अनुमान का अर्थ है जो अन्तश्चक्षु यानी विवेक से जाना जा सके और शास्त्रज्ञान का अर्थ है पुस्तकीय जानकारी अर्थात् विद्या। धर्माधर्म या करणीय-अकरणीय का निर्णय इन तीनों के आधार पर ही हो सकता है। स्पष्टतः यह श्लोक विद्या-विवेक और तर्क-वितर्क की महत्ता को दर्शाता है।

यही बात महाभारत भी कहता है जब वह देवराज इन्द्र के हवाले से देवगुरु वृहस्पति के इस कथन का उल्लेख करता है कि केवल शास्त्र वचनों अथवा केवल बुद्धि (तर्क-वितर्क) द्वारा धर्माधर्म का सम्यक ज्ञान नहीं होता अपितु दोनों के समुच्चय से होता है।

न धर्मवचनं वाचा नैव बुद्ध्येति न श्रुतम्।
इति बार्हस्पतं ज्ञानं प्रोवाच मघवा स्वयं।। (शान्ति पर्व-142/37)

शान्तिपर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर से भी यही बात कही कि धर्म बड़ा गहन विषय है, उसका सम्यक् बोध शास्त्र-वचनों और बुद्धि का प्रयोग कर विवेचन और विश्लेषण से होता है।

धर्मोह्यणीयान् वचनाद् बुद्धिश्च भरतर्षभः। (130/6)

स्त्री पर्व में यही बात युधिष्ठिर ने अर्जुन से कही है कि धर्म के इस गूढ़ स्वरूप का ज्ञान बुद्धि से ही हो सकता है।

यदिदं धर्म गहनं बुद्यया समनुगम्यते।। (5/1)

महाभारत में धर्मव्यास कहते हैं कि जो न्याययुक्त होता है वही धर्म है। अनाचार का नाम ही अधर्म है। ऐसा शिष्ट पुरुषों का कहना है।

आरभ्भोन्याययुक्तो यः स हि धर्म इति स्मृतः।
अनाचारस्त्वधर्मेति एतच्छिष्टानुशासनम्।। (वनपर्व 207/77)

धर्म की यह परिभाषा भी बुद्धि और विवेक की आवश्यकता का प्रतिपादन करती है क्योंकि न्याय क्या है? और अन्याय क्या है? यह तो बुद्धि विवेक से ही जाना जा सकता है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि धर्माधर्म का निर्णय अर्थात् किसी समय और किसी परिस्थिति में क्या करणीय है और क्या अकरणीय है इसका निर्णय बुद्धि का प्रयोग किये बिना हो ही नहीं सकता। हमारी संस्कृति और धर्मग्रन्थों में विवेक अर्थात् तर्क द्वारा निर्णय पर पहुँचने को कितना महत्व दिया गया है वह अधोलिखित उद्धरणों से पूरी तरह स्पष्ट होता है।

वेदों के छः अंगों में यास्क मुनिकृत निरुक्त का प्रमुख स्थान है। शब्दों के विश्लेषण द्वारा वेदों के मन्त्रें का अर्थ जानने में सहायता देना इसका मुख्य विषय है। यह निरूक्त तर्क की महत्ता साफ शब्दों में घोषित करता है। उसके अनुसार इहलोक से जब ऋषि परम्परा समाप्त होने लगी तो मनुष्यों ने देवताओं से पूछा कि अब हमारे लिए कौन ऋषि होंगे? देवताओं ने उत्तर दिया अब तर्क ही ऋषि का स्थान लेगा। विचारशील विद्वान् तर्क द्वारा जिस निर्णय पर पहुँचता है उसे आर्ष वचन या ऋषि-वचन ही समझना चाहिए।

मनुष्या वा ऋषित्क्रामप्सु देवान्ब्रूवन्को न ऋषिर्भविष्य तीति।
तेभ्य एतं तर्कमृषि प्रायच्छन् यदेव किं चानूचानोऽभ्यूहति आर्षतदवति।।13।12

जन साधारण को यह उक्ति सहजता से याद रहे इसलिए इस श्लोक को अपने कवि ने अद्योलिखित रूप से छन्दोबद्ध किया है।

ऋषि परम्परा वसुन्धरा से लगी खत्म जब होने
पूछा मानव ने देवों से कौन ऋषि अब होंगे?
उत्तर मिला तर्क लेगा अब आगे ऋषि स्थान
युक्ति युक्त जो भी होता है वह ऋषि वचन समान
ऊहापोह के बाद करे विद्वानों ने जो निश्चय।
आर्ष वचन ऋषि वचन वही है यह देवों का निर्णय।।

शास्त्रें में कोई बात लिखी है इसीलिए उसे मान लेना ठीक नहीं, क्योंकि केवल शास्त्र के द्वारा कर्तव्याकर्तव्य (धर्माधर्म) का निर्णय नहीं हो सकता। शास्त्र-वचनों को भी विवेक अर्थात् व्यावहारिक बुद्धि द्वारा परखकर निर्णय लेना चाहिए। युक्तिहीन विचार अर्थात् तर्क की कसौटी पर खड़ा न उतरनेवाले वचन तो धर्म की क्षति ही करते हैं।

केवलम् शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्योहि विनिर्णयः।
युक्तिहीनं विचारेततु धर्मं हानि प्रजायते।। (महाभारत)

तर्क-वितर्क, वाद-विवाद से असलियत उभरकर सामने आती है। 'वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः इस लोकोक्ति का यही अर्थ है।

हमारी संस्कृति में योगवासिष्ठ का कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। उसमें महर्षि वसिष्ठ ने राम को उपदेश दिया है। यह ग्रन्थ भी तर्क-वितर्क की महत्ता का बखान करते हुए कहता है कि सामान्य व्यक्ति द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि वह युक्तियुक्त (तर्क संगत) बात कहता है तो ग्रहण करने योग्य है, इसके विपरीत ऋषिप्रोक्त शास्त्र भी यदि तर्कहीन बात कहता है तो वह त्यागने योग्य है। मनुष्य को न्याय्य (नैतिक, उपयोगी, हितकर) बात ही माननी चाहिए। तर्कसंगत बात यदि कोई बच्चा भी कहे तो मान लेना चाहिए, क्योंकि वह उपयोगी होता है। इसके विपरीत स्वयं ब्रह्मा भी कोई तर्कहीन बात कहें तो उसे तिनके की तरह तुच्छ समझकर त्याग देना चाहिए।

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं सूक्तिबोधकम्।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना।।
युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यतृणमिव व्याज्यप्युक्तं पप्र जन्मना।। (2/18/23)

अपने कवि के छन्द में-

साधारण भी व्यक्ति अगर कुछ युक्तियुक्त कहता है,
ग्रहण करो, उसमें निश्चय ही सारतत्त्व रहता है।
तर्कविरूद्ध वचन यदि कोई आर्ष पुरुष ही कहता,
त्यागो उसे न उसमें कोई सारतत्त्व है रहता।
बालक ही यदि युक्त युक्त कुछ कहता है तो ले लो,
ब्रह्मा भी यदि तर्कहीन कुछ कहते त्याग उसे दो।।

सुभाषितरत्न भाण्डागार में भी इस आशय का अधोलिखित श्लोक है, जिसका आशय है कि बालक क्या तोता भी यदि युक्ति संगत एवं तर्कपूर्ण बात कहे तो उसे आत्मसात कर लेना चाहिए। इसके विपरीत वृद्ध अथवा विद्वान् भी असंगत और तर्कहीन बात कहे तो उसे नहीं मानना चाहिए।

युक्तियुक्तं वचो ग्राह्यं बालादपि शुकादपि।
अयौक्तिकं तु सन्त्याज्यं अप्युक्तं पद्मयोनिना।।

भगवान् गौतम बुद्ध, हजरत मुहम्मद गाँधी आदि आर्ष पुरुषों ने भी बुद्धि और विवेक को ही धर्म का निर्णायक कहा है। भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि किसी बात को इसलिए नहीं मान लो क्योंकि वह किसी आर्ष ग्रन्थ में लिखा है, इसलिए भी नहीं मान लो क्योंकि वह किसी आर्ष-पुरुष के द्वारा कथित है, इसलिए भी नहीं मान लो, क्योंकि वह परम्परा से चली आ रही है, इसलिए भी नहीं मान लो क्योंकि तुम्हारे गुरु ने वैसा कहा है, बल्कि बुद्धि-विवेक की कसौटी पर कसने के बाद यदि वह खरी उतरे तभी उसे मानो।

भगवान् बुद्ध के उपर्युक्त वचन से मिलती-जुलती बात महाभारत में भी तुलाधार वैश्य ने ऋषि जाजलि से कही है। तुलाधार कहते हैं- जाजले! केवल इसलिए कि अमुक कर्म पूर्वजों द्वारा किया गया है ऐसा नहीं। किसी कर्म का हेतु क्या है, या परिणाम क्या है उसपर विचार करके ही तुम्हें किसी धर्म को स्वीकार करना चाहिए। लोगों ने क्या किया है या क्या कर रहे हैं यह जानकर उसका अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए।

केवलाचरित्वात् तु निपुणो नावबुद्ध्यसे।
कारणाद् धर्ममन्विच्छेन्न लोकचरितं चरेत्।।
यो हन्याद् यश्च मां स्तौति जाजले।। (महा. शा. 262/525)

हजरत मुहम्मद ने मुआज को यमन का सूबेदार बनाकर भेजा। जब सूबेदार चलने लगा, हजरत ने पूछा- वहाँ की समस्याओं का समाधान कैसे करोगे? मुआज ने कहा- कुरान के आधार पर। हजरत ने पूछा- अगर कुरान के साथ समस्याओं का समाधान नहीं बैठा तो? मुआज ने कहा- पैगम्बर की मिसाल सामने रखकर। हजरत ने पूछा- यदि वह भी ठीक न बैठा तब? मुआज ने कहा- अपनी अक्ल और इन्साफ को आगे रखकर काम करूँगा। हजरत मुहम्मद ने अन्तिम तरीके को ठीक बताते हुए कहा कि दूसरों की कही बात को सही नहीं माननी चाहिए। अक्ल का इस्तेमाल करने पर जो सही जँचे वही करना चाहिए।

इस वार्ता से दो निष्कर्ष निकलते हैं- एक यह कि कोई भी पुस्तक जीवन की सारी समस्याओं का समाधान करने में

समर्थ नहीं होती है, और दूसरा यह कि आदमी का असली गुरु उसकी अपनी बुद्धि है। किसी समस्या का सही समाधान अपनी बुद्धि का प्रयोग करके ही ढूँढ़ा जा सकता है। पुस्तकों के शब्द तो बेजान होते हैं, उसका समयानुकूल अर्थ बुद्धि के प्रयोग से ही निकलता है।

आधुनिक काल में सन्त राजनीतिज्ञ राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी इसी बात पर जोर दिया है कि धर्माधर्म का निर्णय बुद्धि-विवेक की कसौटी पर कसकर ही किया जाय। उन्हीं के शब्दों में 'शास्त्र के नाम पर चलनेवाली बहुत-सी बातें शास्त्रीय नहीं होती। इसलिए शास्त्र की पुस्तकें पढ़ते वक्त बहुत सावधानी रखनी चाहिए। शास्त्र का प्रमाण जब बुद्धि के पास पर खड़ा होता तब वह कमजोरों के लिए मददगार साबित होता है और उन्हें ऊँचा उठाता है। लेकिन जब वह आत्मा की गहराई में से आनेवाली पुकार से पवित्र हुई बुद्धि के तकाजे पूरे करने से इन्कार करता है और उसकी जगह ही रोक लेना चाहता है तब वह इंसान को नीचे गिराता है। स्मृतियों में ऐसे कितने ही नियम बताए जा सकते हैं जो लाजिमी तो क्या, अमल करने लायक भी नहीं होते।

जो कुछ संस्कृत में लिखा है उन सबको धर्मशास्त्र नहीं मानना चाहिए। इसी तरह यह भी नहीं मानना चाहिए कि धर्मशास्त्र समझे जानेवाले मनुस्मृति वगैरह प्रमाणिक ग्रन्थों में जो कुछ आजकल हम पढ़ते है। वह सब मूल लेखक का ही लिखा है, या ऐसा हो तो भी वह सब आज अक्षरशः मानने लायक है।

कुछ सिद्धान्त सनातन है। लेकिन यह समझने की कोई वजह नहीं कि उन सिद्धान्तों पर जो-जो आचार जिस-जिस जमाने के लिए बनाए गए थे वे सभी दूसरे जमाने में भी सच ही रहेंगे। स्थान, काल और परिस्थिति के कारण आचार बदलते हैं। जहाँ बुद्धि लगायी जा सकती है वहाँ श्रद्धा की गुंजाइश नहीं होती, जो चीज बुद्धि से परे है, उसी के लिए श्रद्धा काम की है। जैसे सभी पुरानी बातों को न मानने वाले भूल करते हैं वैसे ही उन्हें सच्ची माननेवाले भी गलती करते हैं। पुरानी हो या नई सभी चीजों को बुद्धि की कसौटी पर चढ़ाना चाहिए और जो चीज उस पर न चढ़ सके उसे बिलकुल छोड़ देना चाहिए। शास्त्रों के किसी भी ऐसे अर्थ को नहीं मानना चाहिए जो तर्क और नैतिकता के प्रतिकूल हो।

****

शंकराचार्य का समन्वयवाद

"आगा खाँ के महल में बन्द बापू उन दिनों हिन्दुधर्म के गहन अध्ययन और मनन में लगे थे। उनकी सेवा-टहल के लिए रखी गयी डा० सुशीला नैयर ने एक दिन उनसे पूछा- क्या आप मानते हैं शंकराचार्य ने भारत से बौद्ध धर्म का उच्चाटन किया और यह काम अच्छा नहीं हुआ?"

गाँधीजी ने जो कहा, वह आज भी एक आदर्श उत्तर है, उनके लिए जो जगद्गुरु को संकीर्ण, परधर्मद्वेषी और जाने क्या-क्या बताकर उनकी महत्ता चौखटबंद करने के मूर्ख प्रयासों में समय नष्ट कर रहे हैं।

गाँधीजी ने कहा था- "सुशीला तेरी बात बिल्कुल उलटी है। आचार्यजी ने बौद्ध धर्म को फ़ेंका कहाँ? उन्होंने तो उसका सार-भाग भर लिया। उन्हीं की बदौलत आज बौद्धधर्म जितना भारत में है उतना न चीन में है, न जापान, वर्मा न श्रीलंका में। गौतम बुद्ध का यदि आज पुनर्जन्म हो, तो वे खुद कहेंगे कि बौद्धधर्म का सत्त्व तो भारत में ही है, शेष तो सब भूसा है।"

(डा. एस.एन.पी.सिन्हा के आलेख "सांस्कृतिक समन्वयाचार्य : शंकराचार्य" से)

पुस्तक समीक्षा

जलन्धरवधमहाकाव्यम्, संस्कृत महाकाव्य, प्रणेता- डा. रामविलास चौधरी, पूर्व संस्कृतविभागाध्यक्ष, पटना विश्वविद्यालय, पटना। हिन्दी अनुवाद- डा. ध्रुव कुमारी चौधरी। प्रधान सम्पादक- प्रो. परमेश्वरनारायण शास्त्री, कुलपति, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थान, दिल्ली। प्रकाशक- कुलसचिव, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, दिल्ली। प्रकाशन वर्ष- 2020. ISBN. 978-93-85791-46-8. मूल्य- 165 रुपये मात्र। कुल पृष्ठ- 176. सजिल्द।

डा. रामविलास चौधरी प्रणीत जलन्धरवध नामक महाकाव्य शिवपुराण (रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड, अध्याय 13 से 26 पर्यन्त) की जलन्धर-वध कथा पर आधारित आधुनिक महाकाव्य है। इसमें 11 सर्ग हैं। इसमें समुद्र के पुत्र जलन्धर के जन्म-वृत्तान्त से लेकर वधपर्यन्त पूरी कथा को आधार बनाया गया है। एक बार बृहस्पति एवं इन्द्र कैलास दर्शन के लिए गये। कैलास के रास्ते में इन दोनों ने एक आकृति देखी, जिसे रास्ते से हट जाने के लिए कहा। जब वह आकृति नहीं हटी तो इन्द्र ने वज्र प्रहार कर दिया। उस आकृति के रूप में स्वयं भगवान् रुद्र थे। वे इन्द्र के वज्र प्रहारसे कुपित हो उठे। बाद में महादेव को पहचानने पर दोनों ने उनकी स्तुति की। इस स्तुति पर प्रन्न होकर भगवान् शिव ने अपने नेत्र से उत्पन्न तेज को समद्र में फेंक दिया। इसी तेज से जलन्धर की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने उस जलन्धर का अभिषेक किया। समय आने पर कालनेमि की पुत्री वृन्दा के साथ उसका विवाह हुआ। वह समुद्र के राज्य का राजा बन गया।

एक दिन उसने राहु के शिर काटे जाने का वृत्तान्त गुरु शुक्राचार्य से पूछा। इस पर शुक्राचार्य ने उसे समुद्रमन्थन, अमृत की उत्पत्ति तथा समुद्र से प्राप्त रत्नों को देवताओं के द्वारा ग्रहण किये जाने की पूरी कथा सुनायी। यह सुनकर जलन्धर ने देवताओं को उन्न रत्नों को वापस करने का संदेश भेजा इन्द्र के पास भेजा। इन्द्र के अस्वीकार करने पर दोनों पक्षों में युद्ध हुआ जिसमें देवतागण पराजित हो गये।

तब देवता भगवान् विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने भी जलन्धर से युद्ध किया और उसके पराक्रम पर प्रसन्न होकर वरदान देने की पेशकश की। जलन्धरने वरदान में माँगा कि आप मेरी बहन के पति हैं अतः चार मास आप मेरे घर आकर मेरी बहन के साथ निवास करें। विष्णु ने इसे स्वीकार कर लिया।

इधर जलन्धर के उपद्रव से बचाने के लिए देवताओं ने नारद की स्तुति की। उपाय खोजते हुए नारद जलन्धर की नगरी पहुँचे और वहाँ उन्होंने पार्वती को पाने के लिए जलन्धर उकसाया। जलन्धर ने भगवान् शिव पर आक्रमण कर दिया। दोनों के बीच युद्ध हुआ। रणक्षेत्र में जलन्धर ने अपनी माया फैलायी तथा शिव के सैनिकों को सम्मोहित कर लिया। पार्वती के साथ रमण करने की इच्छा से शिव का रूप धर कर कैलास पहुँचा, जहाँ पार्वती उसे पहचान कर सावधान हो गयी। अब शिव-पार्वती ने तब जलन्धर से परेशान होकर उसका वध के लिए मन्त्रणा की, जिसमें विष्णु को भी सम्मिलित करने के लिए भगवान् शिव नें विष्णु को मोहित कर लिया। योजनानुसार मोहित विष्णु ने जलन्धर का रूप धारण कर वृन्दा के साथ रमण किया। बाद में पहचान जाने पर वृन्दा ने खिन्न होकर विष्णु को पत्नी-वियोग का शाप दिया और वह अग्नि में प्रवेश कर गयी। इधर शिव और जलन्धर के बीच आमने सामने के युद्ध में जलन्धर का वध हुआ। विष्णु ने भी शिव की माया से प्रसृत मोह का भंग होने पर तुलसी के रूप में वृन्दा की उत्पत्ति की घोषणा की तथा अपनी पूजा में तुलसी की अनिवार्य उपस्थिति की घोषणा की।

इस महाकाव्य में कवि ने आधुनिक वर्णनों का भी समावेश किया है। सर्ग संख्या 7 में वसन्त वर्णन के क्रम में कृषकों की दुःस्थिति का वर्णन भी आया है तथा वर्तमान काल में सामान्य जनता के दैन्य का यथार्थपरक वर्णन भी किया गया है। किसान दिन-रात परिश्रम कर भी सुखी नहीं हैं। समाज में दहेज, घुसखोरी, धोखाघड़ी, व्यापारियों के द्वारा टैक्स चोरी आदि प्रवृत्तियाँ फैली हुई हैं-

वाणिज्यवृत्तौ विविधैरुपायैः करस्य चौर्ये वणिजः प्रवीणाः।
उद्धारलुब्धा अभियन्तृवर्गाः भवन्ति मान्याः धनिनः समाजे।। (7.26)

इस प्रकार, यह सम्पूर्ण महाकाव्य पौराणिक कथाओं पर आधारित होता हुआ भी आधुनिकताबोध के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह वर्तमान काल में भी संस्कृत-रचना की अक्षुण्णता का प्रतिपादन करता है। यह सिद्ध करता है कि संस्कृत भाषा महज मृत भाषा नहीं है। इसमें एक जीवन्तता आज भी विद्यमान है।

हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित होने के कारण हिन्दी के पाठकवर्ग के लिए भी यह पठनीय है। विद्वान् रचनाकार ने जलन्धरवध की पूरी कथा तथा परिस्थितियों का वर्णन कर यह सिद्ध किया है कि जलन्धर लक्ष्मी का भाई फलतः विष्णु का साला है। पहले उसने पार्वती को दूषित करने का प्रयास किया, जिसमें वह असफल रहा। इसके बाद शिव की इच्छा से मोहित विष्णु ने युद्धकाल में वृन्दा को साथ रमण किया। आधुनिक काल मे जिस प्रकार आर्य और अनार्य का भेद कर सामाजिक ऊँच-नीच के भेदभाव की बात की जाती है- ऐसी कोई बात मूलकथा में नहीं है। जलन्धरवध का उल्लेख सम्पूर्ण कथा के साथ होने पर विष्णु के ऊपर साम्यवादियों के द्वारा लगाये गये आरोप स्वतः व्यर्थ हो जाते हैं।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला अंक **रामानन्दाचार्य-विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। माघ कृष्ण सप्तमी तिथि को रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य रामानन्द की जयन्ती मनायी जाती है। उन्होंने सामाजिक समरसता के लिए **जात-पाँत पूछै नहि कोय हरि को भजै सो हरि को होय** का नारा देकर मध्यकाल में एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात किया था। बिहार में भी उनकी शिष्य-परम्परा तथा उनके अनेक सम्प्रदाय-गत स्थान हैं, जिन पर शोधकार्य नहीं हुए हैं। रामान्दाचार्य के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं बिहार के सन्दर्भ में विशेष रूप से उनकी शिष्य परम्परा पर केन्द्रित यह अंक प्रस्तावित है। साथ ही, माघ मास हमारी सनातन परम्परा में भी महत्त्वपूर्ण है। इसी मास सूर्य-व्रत के रूप में मकर-संक्रान्ति, अचला सप्तमी, सरस्वती-पूजा, तुषार-व्रत भी होते हैं। इन सभी विषयों पर आलेख इस विशेषांक हेतु आमन्त्रित हैं।

लेखकों से अनुरोध है कि संस्कृत के उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद अवश्य दें, जिससे हिन्दी के पाठ उन्हें हृदयंगम कर सकें। इस अंक में व्यवहृत सन्दर्भ की शैली में लिखित सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल **dharmayan-hindi@gmail.com** पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

महावीर मन्दिर समाचार

राम-जानकी विवाह-उत्सव

दिनांक 19.12.2020 शनिवार को श्री महावीर मन्दिर पटना के तत्त्वाधान में श्रीरामजानकी विवाह का भव्य आयोजन किया गया। उपस्थित सभी श्रद्धालु अत्यन्त शांत भाव एवं प्रसन्न मुद्रा में बैठे रामजानकी विवाह के प्रदर्शन एवं गायन का भरपूर आनन्द ले रहे थे। मिथिला से परम्परागत श्रीसीताराम विवाह मिथिला मण्डली के द्वारा प्रस्तुत इस द्विदिवसीय कार्यक्रम ने दर्शकों का मन मोह लिया। मिथिला से आये श्री विपिन कुमार ठाकुर के नेतृत्व में तथा व्यास श्री चन्दनाथ चौधरी के रामचरितमानस के गायन से यह कार्यक्रम सुचारु पूर्वक सम्पन्न हुआ। पहले दिन के कार्यक्रम मे जयमाल एवं विवाह प्रमुख रहा। 'झुकि जाऊ तनिक रघुवीर, लली मोरि छोटी सी'। 'मंगलमय दिन आजु हे रघुपति घर आयल'। स्वागत में गाली सुनाउ मोरी सखिया....। "आजु परिछू माई रघुवर के आजु शुभ दिन आयल" 'आनन्द-आनन्द आज शुभे हो शुभे 'कौन नगर के सिन्दुरिया, सिन्दूर बेचे आइल हे। माई हे कौने नगर के कुमारी धिया सिन्दूर बेसाहल हो।' आदि गायन से यह कार्यक्रम सजीव हो उठा।

दूसरे दिन कोहबर, जमनार (दामाद का प्रथम भोजन) तथा बिदाई का कार्यक्रम सम्पन्न किया गया, जिसमें "श्री कोहबरबा घरवा राजै वरबा चार गुँसइयाँ" तथा "आजु विधना के कतेक गुनमा गाउ हे सखी", "प्रिय पाहुन राज दुलार रुचि सौं जेम लियो।", "तौ पर मैं वारी सँवरिया हो दुलहा" आदि गीतों से भरा वहा कार्यक्रम सबसे आकर्षक रहा। कार्यक्रम के अन्त में बिदाई का भी मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया गया। इस समय श्रीराम चारों भाई अपनी पत्नियों के साथ जनकपुरी से विदा लेते हैं और जनकपुरी की महिलाएँ बिदाई के गीत गातीं हैं। "बड़ा रे जतन सओं सिया धिया पोसलहुँ सेहो रघुवंशी लेने जाये।" तथा "ई हम जनितहुँ सखि श्यामला पहुँनमा से बिहने सबेरे घरबा जैती हो लाल।" आदि भावविभोर करनेवाले गीत गाये गये।

इस पूरे कार्यक्रम को ऑनलाइन मध्यम से हजारों लोगों ने देखा। कोविड-19 के कारण जो लोग कार्यक्रम में सदेह उपस्थित नहीं हो सके थे उन लोगों ने भी इस आनलाइन व्यवस्था पर हर्ष प्रकट किया। कोविड-19 के निर्देशों का का पालन भी कराया गया है।

गीता-जयन्ती का समारोह

दिनांक 25.12.2020 को महावीर मन्दिर परिसर में 4:00 बजे से गीता-जयन्ती का समारोह आयोजित किया गया। मन्दिर के पण्डित श्री सौरभ पाण्डेय गीता से 11वें अध्याय तथा दूरे अध्याय का सस्वर पाठ तथा 'धर्मायण' पत्रिका के सम्पादक प. भवनाथ झा ने उन प्रसंगों की व्याख्या की, जिन्हें मानव जीवन में उतारने पर जीवन सुचारु रूप से सुखमय हो जाता है। प. झा ने कहा

कि गीता के उपदेश व्यवहार में उतारने के लिए है। इसमें सुखमय जीवन के सूत्र दिये गये हैं। यद्यपि कर्म, भक्ति एवं ज्ञान इन तीनों के सम्बन्ध में कहा गया है, किन्तु गीता मूल रूप से कहती है कि कोई व्यक्ति जो कुछ भी करता है, जो खाता है, जो पीता है, वह मुझे अर्थात् ईश्वर को अर्पित करे। गीता सम्पूर्ण समर्पण सिखाती है। यदि हम केवल गीता के इसी उपदेश को मान लें तो जीवन धन्य हो जाये। अतः हम किसी फल के उद्देश्य से कोई कार्य न करें। गीता कर्म करना सिखाती है। गीता कहती है कि आपका जो भी कार्य है, उसे ईश्वर के कार्य के रूप में करें। गीता का थोडा-सा भी मनन-चिन्तन कर लेने से हमारा जीवन उन्नति की ओर अग्रसर होता जायेगा। गीता का ज्ञान अत्यन्त गम्भीर है, अतः इसके जितने भी व्याख्याकार हुए हैं, सबने अलग-अलग दिशा में अलग अलग बातें लिखीं हैं। जिस आचार्य ने जिस दृष्टि से गीता को समझने का प्रयास किया, वे उसे उसी प्रकार समझ सके। लेकिन गीता की यह विशेषता है कि यदि इसकी एक भी बात हम मान लें. उसे अपने जीवन में उतार लें तो हमरा जीवन धन्य हो जायेगा। वह ऐसी गंगा के समान है, जिसकी गहराई में उतरे विना भी हम किनारे बैठकर एक चुल्लू जल पीकर अपनी प्यास बुझा सकते हैं।

महावीर मन्दिर के फेसबुक पर इस पूरे कार्यक्रम को लाइव दिखाया गया, जिसे उस काल में लगभग 4000 लोगों ने देखा। इस पूरे कार्यक्रम को बाद में भी https://www.facebook.com/PatnaMahavirMandir लिंक पर देखा जा सकता है।

अयोध्या में राम-रसोई का भव्य वार्षिक आयोजन

दिनांक 19 दिसम्बर को राम-रसोई का वार्षिक आयोजन किया गया, जिसमें लगभग 1000 व्यक्तियों ने निःशुल्क भोजन किया। महावीर मन्दिर, पटना के द्वारा यह **राम-रसोई** अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि के ठीक बगल में अवस्थित अमावा राम मन्दिर में आरम्भ किया गया है। इसका शुभारम्भ विगत वर्ष 2019 में श्रीसीताराम विवाह के शुभ अवसर पर हुआ था। एसके अन्तर्गत अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि के दर्शन के लिए बाहर से आने वाले तीर्थयात्रियों को निःशुल्क भोजन कराया जा रहा है। इस अवसर पर महावीर मन्दिर के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने अपने हाथों से तीर्थयात्रियों को भोजन परोसा।

ध्यातव्य है कि महावीर मन्दिर के द्वारा इसी प्रकार की योजना माता जानकी की जन्मस्थली पुनौरा धाम, सीतामढ़ी में भी **सीता-रसोई** के नाम से आरम्भ की गयी है, जो 2019 ई. के रामानन्द जयन्ती के दिन से ही संचालित है। यहाँ भी बाहर से आनेवाले सभी तीर्थयात्रियों को निःशुल्क भोजन कराया जाता है। इससे यहाँ पर्यटन में वृद्धि हुई है।

***

वेदोऽखिलो

मातृभूमि-वन्दना

अथर्ववेद, काण्डसं. 12 सूक्त सं. 1

गताङ्क से

जिस भूमि पर हम वास करते हैं, उसके प्रति हम यदि अपना कर्तव्य निभायें तो हमारी मातृभूमि हमें माता की तरह सब कुछ देती हुई हमारा पोषण करती है। अथर्ववेद का पृथ्वी-सूक्त हमें उन कर्तव्यों को पूरा करने का आदेश देता है। पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर द्वारा अनूदित यह पृथ्वीसूक्त 'धर्मायण' की अंक संख्या 93 से क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना।
यत्त ऊनं तत्त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥61॥

हे हमारी मातृभूमि तू हम सबको सुख देनेवाली है। इसलिए जो तेरे में कमी हो उसे परमेश्वर पूरा करें।।61।।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥62॥

हे हमारी मातृभूमि, जो हमलोग तुमसे उत्पन्न हुए हैं, वे नीरोग, दृढ़ाग, दीर्घायु, बुद्धिमान, जागृतिसम्पन्न रहें और मातृभूमि के हित के लिए अपने निज के स्वार्थ का बलि देने में उद्यत रहें, सब भाँति तुम्हारा हित करने में तत्पर रहें।।62।।

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥63॥

हे मातृभूमि, मुझे बुद्धिवान कर और तेरे विषय में प्रतिदिन चिन्ता करनेवाले सूक्ष्म विचारी और दूरदर्शी मनुष्य को मुझे अपनी भूमिगत सम्पत्ति प्राप्त कर देनेवाली हो।।63।।

इस प्रकार कुल 63 मन्त्रोंवाला यह पृथ्वीसूक्त सम्पन्न हुआ।

***

व्रत-पर्व

पौष (पूस), 2077 वि. सं.
31 दिसम्बर, 2020 ई. से 28 जनवरी, 2021 ई.

1. सफला एकादशी, 09 जनवरी 2021ई.

इस दिन फल भोग लगाकर एकादशी व्रत करने का विधान है। फल के साथ होने के कारण इसे सफला कहा गया है। सफला एकादशी की कथा में कहा गया है कि इस दिन व्रत कर पीपल वृक्ष के नीचे विष्णु के नाम से फल अर्पित करना चाहिए।

2. **दशतारकारम्भ, 11 जनवरी 2021 ई.**

इस दिन से 11 जनवरी तक के दिनों को दशतारक कहा गया है। इन दिनों वर्षा, गरज, आँधी, ओला गिरना, बिजली का चमकना आदि लक्षण दीखने से अगले वर्ष बरसात में अच्छी वर्षा की भविष्यवाणी की जाती है। विशेष के लिए इसी अंक में दशतारक पर विवेचन देखें।

3. पौषी अमावस्या, दिनांक 13 जनवरी 2021ई.

4. मकरसंक्रान्ति, 14 जनवरी 2021ई.

इस दिन प्रातःस्नान कर तिल, तिल से बने पदार्थ तथा दही का भोजन करना चाहिए। तिल दान करने का भी विधान है। मिथिला में खिचड़ी, जही, तिलबा, चूड़ालाई, मूढ़ीलाई तथा मगध में चूड़ा, दही, शक्कर की चूरण भूरा, तिलकूटआदि खाने की परम्परा है।

5. गुरु गोविन्द सिंह जयन्ती, 20जनवरी 2021ई.

6. दशतारकान्त, 21 जनवरी 2021ई.

दशतारकारम्भ में देखें।

7. कर्मदशमी, विश्वकर्मा-जयन्ती, 23 जनवरी 2021ई.

भारत में सामान्य रूप से विश्वकर्मा पूजा 17 सितम्बर को मान लिया गया है, किन्तु शास्त्रीय रूप में इस दिन पौष शुक्ल दशमी को कर्मदशमी के दिन विश्वकर्मा का अवतरण माना जाता है। इस दिन विश्वकर्मा-पूजा की तरह ही पूजा करनी चाहिए।

8. पुत्रदा एकादशी, 24 जनवरी 2021ई.

पौष शुक्ल एकादशी का नाम पुत्रदा एकादशी है। इस दिन व्रत करने से सन्तान की प्राप्ति होना कहा गया है। ध्यान रहे कि संस्कृत में पुत्र शब्द का व्यवहार सामान्य लिंग अर्थात् पुत्र एवं पुत्री दोनों के लिए किया जाता है।

9. नारायण द्वादशी, 25 जनवरी, 2021ई.

पौष मास की यह द्वादशी तिथि बहुत महत्त्वपूर्ण है। एकादशी का व्रत कर प्रातःकाल में यह पूजा की जाती है, जिसके बाद एकादशी की पारणा होती है।

10. शाकम्भरी जयन्ती, पौषी पूर्णिमा, व्रत एवं स्नान-दान, लक्ष्मण संवत् 912 का प्रारम्भ आदि, 28 जनवरी, 2021ई.

पौष मास की पूर्णिमा तिथि में पवित्र नदियों में प्रातःस्नान का विशेष महत्त्व है। देवी की उपासना की परम्परा में अकाल के समय शाक से लोगों का भरण-पोषण करनेवाली शाकम्भरी देवी की उत्पत्रि इसी दिन हुई थी। दुर्गासप्तशती में इनकी कथा दी गयी है। बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन ने इस संवत् का प्रारम्भ किया था। मिथिला क्षेत्र में 16वीं शती तक इसी संवत् का प्रचलन था।

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान'** प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय **राम-राम, जय सियाराम**, **जय सीताराम**, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

महावीर कैंसर अस्पताल की राजस्व नीति ऐसे डिजाइन की गई है कि इससे समाज के जरूरतमंद, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए कोई कठिनाई नहीं हो और कुछ प्रतिशत रोगियों का मुफ्त इलाज किया जा सके। बिहार राज्य में यह केंद्र अब समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए, 'हीलिंग का केंद्र' के रूप में खड़ा हुआ है। इसे पैरामेडिकल स्टाफ के साथ-साथ अच्छी तरह से प्रशिक्षित, प्रेरित और समर्पित डॉक्टरों के एक समूह द्वारा प्रबंधित किया जा रहा है। बिहार राज्य में स्वास्थ्य सेवा के विकास की योजना में किसी भी योगदान के लिए हम तैयार हैं। इस केंद्र को 'ए सेंटर ऑफ एक्सीलेंस' बनाने के लिए समर्थन और भागीदारी की अपेक्षा है। - आचार्य किशोर कुणाल का वक्तव्य।

तस्वीरें महावीर कैंसर संस्थान की 22 वीं स्थापना दिवस समारोह की हैं

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

महावीर मन्दिर पटना के द्वारा अयोध्या में श्रीरामजन्मभूमि के बगल में अवस्थित अमावा राम मन्दिर में राम-रसोई की योजना एक वर्ष से चल रही है। इसके अन्तर्गत बाहर से आये सभी तीर्थयात्रियों को निःशुल्क भोजन कराया जा रहा है। विशेष विवरण देखें- http://ramrasoi.org/

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा निःशुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित